सितम्बर / अक्तूबर 2025

रूहानी रिश्ता

साइंस ऑफ़ द सोल रिसर्च सेंटर

विषय सूची

4 ख़ामोशी से मुस्कुरानेवाला
5 सत्संगी बनना
11 जीवन की दिव्य एकता
16 सेवा–बदलाव का ज़रिया
21 इक दीन भिखारी हूँ चिथड़ों में
22 मनुष्य होना ही सबसे बड़ा उपहार है
27 सबसे ज़बरदस्त परिवर्तन?
33 दिल से की गई प्रार्थनाएँ
34 अपने आपे को आईने में देखना
40 हमारे जीवन के दिन
43 सर्वोत्तम मुक्ति
48 प्रेम को समझना

रूहानी रिश्ता

Science of the Soul Research Centre
Guru Ravi Dass Marg, Pusa Road, New Delhi-110005, India
Copyright © 2025 Science of the Soul Research Centre®

बिना स्रोत के कुछ लेख और कविताएँ इस पत्रिका के लेखकों द्वारा लिखी गई हैं।

भाग 21 • अंक 5 • सितम्बर अक्तूबर 2025

ख़ामोशी से मुस्कुरानेवाला

इतनी सारी बातचीत।
संसार में हर किसी का हर विषय पर पंडित बन जाना।
जानते हैं हम जो, क्यों ज़रूरी है वह सब दूसरों को बताना?

हमारे मन की पुरानी लाइब्रेरी में जमा
संसार के बारे में जो थोड़ा-बहुत ज्ञान है हमारा,
उस ज्ञान से भरे शब्द ऐसे फिसलते हैं हमारी ज़ुबान से
कालीनों के उस व्यापारी की तरह जो इतराता हुआ
एक-एक करके खोलता है कालीन अपने,
बाज़ार में भावी ख़रीदारों को दिखाने के लिए।

और वहीं, एक कोने में,
बैठा हुआ ख़ामोशी से मुस्कुरा रहा कोई,
उस प्रकाश और संगीत के सागर में डूबा हुआ
जिसे कोई और नहीं देख पाता।

बच्चे की-सी मासूम हैरानी से,
देखता है वह अपने इर्द-गिर्द इस क़ायनात को,
जानता है कि वह इसे पूरी तरह से समझ नहीं सकता।
उसकी अर्थपूर्ण ख़ामोशी कहती है-
वह केवल इतना ही जानता है... कि
वह कुछ नहीं जानता।
उसके वुजूद से निकलती आनंद की अनगिनत तरंगें,
जिन्हें भी छूती हैं उन सभी को आनंदित करती हुईं,
अनंत तक फैल जाती हैं।

सत्संगी बनना

हमें नामदान की बख़्शिश हुए चाहे कुछ महीने या कई साल हुए हों, हम ख़ुद को सत्संगी समझने लगते हैं। हम सत्संगी बनने को अपनी पहचान का महत्त्वपूर्ण हिस्सा मानने लगते हैं, इसका प्रभाव हमारी जीवन शैली पर पड़ता है। पर क्या हम सचमुच सत्संगी हैं? असल में सत्संगी होने का क्या मतलब है? साधारण लफ़्ज़ों में किसी रूहानी मार्ग पर चलनेवाले या किसी से दीक्षा प्राप्त करनेवाले को सत्संगी कहा जाता है, लेकिन इस शब्द का असल अर्थ इससे अलग और गहरा है। महाराज जगत सिंह जी इस बारे में विस्तार से समझाते हुए फ़रमाते हैं:

> *केवल नाम पा लेने से ही कोई सत्संगी नहीं बन जाता। सत्संगी को अपने जीवन को संतमत के साँचे में ढालना चाहिए। उसका हर एक विचार, वचन और कर्म संतमत के उसूलों के अनुसार होना चाहिए। कथनी से करनी ज़्यादा ज़रूरी है। विचारों की शक्ति तो और भी अधिक है। सत्संगी का रोज़ का जीवन और रहन-सहन बहुत साफ़ और ऊँचे दर्जे का होना चाहिए। उसकी रहनी से ही यह ज़ाहिर होना चाहिए कि वह पूरे सतगुरु का शिष्य है।*
>
> *आत्म-ज्ञान*

जब तक हम अंदर जाकर परमात्मा रूपी सच से, शब्द स्वरूपी सतगुरु से नहीं जुड़ जाते, तब तक हम सत्संगी नहीं हैं, हम सिर्फ़ जिज्ञासु हैं। शायद इससे हम अपनी पहचान को लेकर दुविधा में पड़ जाएँ, पर हममें से ज़्यादातर लोगों के बारे में यह बात बिलकुल सच है। हम जानते हैं कि हमारा अनुभव कितना सीमित है, ज़्यादा से ज़्यादा हम अपने आप को सत्संगी बनने के इच्छुक कह सकते हैं। ऐसा कहने में कोई बुराई नहीं है। सतगुरु हमें समझाते हैं कि अगर हम अपनी पूरी ज़िंदगी खोज में लगा दें, तो भी यह समय को व्यर्थ गँवाना नहीं है। सच की खोज में बिताया जीवन

ही सार्थक है। खोज करने से हम आगे बढ़ते हैं, हम किसी लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। एक जिज्ञासु किसी ऐसी चीज़ को खोजने का यत्न करता है जो खो गई है या जो उसकी पहुँच से परे है। हम सब तो उस परम सत्य की खोज में निकले हैं। हम अपने भीतर परमात्मा की आवाज़–शब्द–के बारे में पूर्ण रूप से जागरूक होना चाहते हैं। हम परमात्मा की पहचान करना चाहते हैं।

जिज्ञासु के विपरीत वह व्यक्ति है जिसने पा लिया है। पानेवाला वह है जिसे खोज के बाद कुछ हासिल हो जाता है। इसीलिए करनी पर बल दिया जाता है। कुछ पाने के लिए खोज करनी पड़ती है और अगर हम खोज करते हैं तो यक़ीनन पा लेते हैं। सतगुरु हमें विश्वास दिलाते हैं कि जिस परम सत्य की खोज में हम निकले हैं, उसे हम ज़रूर अनुभव कर लेंगे क्योंकि सच तो यह है कि वह हमारे भीतर ही है। हमें केवल अपने ध्यान को अंतर्मुख करके अनुभव करने और जो पहले से ही हमारा है उसके बारे में जागरूक होने की ज़रूरत है।

खोज का एक अहम हिस्सा इस बात को स्वीकार करना है कि हम भटक गए हैं और चाहते हैं कि कोई हमें मार्ग दिखाए। फिर हमें किसी ऐसे व्यक्ति की मदद लेनी चाहिए जिसने पहले से ही उस सत्य की खोज कर ली हो। सतगुरु परमात्मा के घर के मार्ग के जानकार हैं और अब उनका कार्य इस सफ़र में हमारी मदद और मार्गदर्शन करना है। हुज़ूर महाराज सावन सिंह जी सतगुरु की ज़रूरत के बारे में समझाते हुए फ़रमाते हैं:

> *लोगों की रहनुमाई करने, उन्हें समझाने, उनसे हमदर्दी दिखाने, उनसे प्रेम करने, उनमें विश्वास और भरोसा पैदा करने, उनमें अपने अन्दर शान्ति और आनन्द की तलाश का शौक़ पैदा करने, उन्हें रास्ता दिखाने, उन्हें एक मिसाल बनकर समझाने, उनमें दैवी गुण पैदा करने और उन्हें इस स्थूल शरीर से निकालकर सूक्ष्म शरीर में ले जाने के लिए गुरु इनसानी चोला धारण करता है।*
>
> *परमार्थी पत्र, भाग 2*

सतगुरु इंसानी जामे में इसलिए आते हैं ताकि हम उनके साथ रिश्ता जोड़ सकें। वह भी जीवन के उन्हीं अनुभवों से गुज़रते हैं जिन से हम गुज़रते हैं जैसे बचपन, शिक्षा, विवाह, बच्चों का पालन-पोषण, बीमारियों से जूझना ताकि हमें सिखा सकें। हमें इस संसार रूपी भवसागर में फँसा हुआ देखकर जब वह हमसे सहानुभूति दिखाते हैं तब हम उन्हें अपना दोस्त मानने लगते हैं। जैसे-जैसे गुरु और शिष्य का रिश्ता गहरा होता है, हम उन्हें और अधिक जानना चाहते हैं। हम जानना चाहते हैं कि वह असल में कौन हैं, हम उनके बताए रास्ते पर चलना चाहते हैं और उनकी मौजूदगी और प्यार का अनुभव करना चाहते हैं।

चूँकि हमारा दायरा सीमित है, मन और शरीर हमें भ्रमों में डालकर उलझाए रखते हैं। हमें मदद की ज़रूरत है। हमें सच्चे देहधारी सतगुरु की रहनुमाई की ज़रूरत है ताकि हम शिष्य बनना सीख सकें। एक सच्चे देहधारी सतगुरु से मार्गदर्शन प्राप्त करना शिष्य के लिए सबसे बड़ा सौभाग्य है। सतगुरु की दया-मेहर से ऐसे हालात बन जाते हैं जो हमें उनके पास ले जाते हैं। सही समय आने पर हमारा उनसे मिलाप हो जाता है। उनकी खोज करना और उनका मिल जाना क़िस्मत में लिखा होता है। हम वे चुनी हुईं (marked) आत्माएँ हैं जो इस इंतज़ार में हैं कि सतगुरु ख़ुद हमें यह यक़ीन दिलाएँ कि वह हमारे लिए आए हैं। वह भटके हुए हम जीवों को रास्ता दिखाते हैं। वह हमें नामदान बख़्शकर उस मार्ग पर डाल देते हैं जिस पर चलकर हम यक़ीनन निज-घर परमात्मा के पास वापस पहुँच सकते हैं।

सतगुरु हमें रूहानी अभ्यास के लिए लगातार प्रेरित करते रहते हैं। वह नहीं चाहते कि हम सिर्फ़ उनके कहने पर भरोसा रखकर बैठे रहें, बल्कि वह चाहते हैं कि हम ख़ुद उस सच्चाई का अनुभव करें। वह चाहते हैं कि हमें सच्ची और शाश्वत ख़ुशी प्राप्त हो, जो केवल अंदर से ही मिल सकती है। जैसा कि हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी अपनी पुस्तक संत संवाद, भाग 1 में समझाते हैं, "मालिक की दया-मेहर और बख़्शिश से ही शिष्य सतगुरु के पास खिंचा चला आता है, सतगुरु उसे नामदान की बख़्शिश कर देते हैं

और इस तरह वह मालिक के पास वापस पहुँचने के लिये भजन-सिमरन में लग जाता है।"

अब यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम परमात्मा के पास वापस लौटने के लिए करनी करें। जीवन में कुछ भी बिना प्रयास के नहीं मिलता। संतमत करनी का मार्ग है जिसमें अनुशासन और हुक्म का पालन करना ज़रूरी है। जीवन-भर भजन-सिमरन करने के लिए आध्यात्मिक जीवन जीना बहुत ज़रूरी है। इसका मतलब है कि हमें संसार में फैले अपने ध्यान को बाहर से हटाकर अंतर में परमात्मा की तरफ़ मोड़ना है। हमें अभ्यास की एक ऐसी विधि समझाई जाती है जिसमें सिमरन अर्थात् सतगुरु की शक्ति से भरपूर पाँच पवित्र नामों का जाप और भजन यानी तीसरे तिल पर परमात्मा की आवाज़-शब्द-को सुनना शामिल है। सिमरन द्वारा अपने ध्यान को आँखों के पीछे एकाग्र कर लेने पर आत्मा को रूहानी शक्ति प्राप्त हो जाती है क्योंकि हम सत्य का अनुभव करने की कोशिश कर रहे होते हैं। वह सत्य 'शब्द' है, परमात्मा की दिव्य-ध्वनि जो पूरी सृष्टि में गूँज रही है।

शब्द ही वह धुनात्मक मार्ग है जो हमें वापस निज-घर ले जाता है। यद्यपि यह सदा हमारे भीतर गूँजता रहता है, मगर हम इसे सुन नहीं पाते। दुनिया के शोर-गुल और उससे भी कहीं अधिक अपने मन की बक-बक के कारण हमारा ध्यान फैला हुआ है। एकाग्र होकर भजन-सिमरन करना ही इस मधुर ध्वनि को सुनने का एकमात्र ज़रिया है।

जब हम सिमरन के ज़रिए मन को शांत और एकाग्र कर लेते हैं, तब हम धीमी से धीमी आवाज़ को भी सुनने की कोशिश करते हैं जो हमें निज-घर परमात्मा के पास पहुँचाने में मदद करती है। संत-महात्मा हमें समझाते हैं कि वह शब्द-धुन हमेशा हमारे साथ है लेकिन हम बाहरी आवाज़ों को सुनने के इतने आदी हो चुके हैं कि हम अपने चारों तरफ़ और भीतर गूँजनेवाली इस मीठी और सूक्ष्म आवाज़ को पहचान नहीं पाते। अगर हम स्थिर होकर इसे सुनने की कोशिश करते रहेंगे तो एक न एक दिन इसे सुनने में सफल ज़रूर होंगे और यह हमें वापस निज-घर की ओर ले जाएगी।

चुनाव हमें करना है। हम या तो एक सच्चे शिष्य बनने के लिए इस रूहानी सफ़र को तय करना चुन सकते हैं या मन के कहने में आकर सदा के लिए इसी रचना से बँधे रह सकते हैं। सत्संगी होने के नाते हमारे पास यह मौक़ा है कि हम मन के धोखे में फँसे रहने के बजाय सत्य के रास्ते पर चलनेवाले शिष्य बनें। इस सफ़र में विरह की ख़ास भूमिका है; इसी की वजह से हम अधिक प्रयास करते हैं और सत्संगी बनने और सत्य को जानने की इच्छा हमें मार्ग पर आगे बढ़ाती है।

ध्यान देनेवाली बात यह है कि सतगुरु हमारी कमियों-कमज़ोरियों की तरफ़ बिलकुल भी ध्यान नहीं देते हैं। जिसे हम अपनी असफलता समझते हैं, उसे वह हमारी कोशिश के रूप में देखते हैं। सतगुरु हमें हमारे असल स्वरूप यानी एक आत्मा के रूप में देखते हैं जो मानव जीवन का अनुभव करती हुई सच्ची शिष्य बनने की कोशिश कर रही है। हुज़ूर महाराज सावन सिंह जी ने पुस्तक *परमार्थी पत्र,* भाग 2 में लिखा है "सन्तजन अभ्यासियों की आत्मा को देखते हैं, न कि उनके मन और शरीर को और यही वजह है कि सन्त कभी जीवों से निराश नहीं होते।" सतगुरु सिर्फ़ इतना ही चाहते हैं कि हम निरंतर कोशिश करते रहें।

यह सफ़र धीरे-धीरे तय होता है और इसे तय कर पाना असंभव लग सकता है पर सतगुरु हर शिष्य को जीवन के हर पड़ाव पर प्रोत्साहित करते हैं। उन्हें हम पर विश्वास है और वह हमें धैर्यपूर्वक निज-घर की तरफ़ बढ़ते हुए देखते हैं। भजन-सिमरन द्वारा हम धैर्यपूर्वक, दृढ़ता व लगन से निरंतर प्रयास करते हुए मन को क़ाबू कर लेते हैं और मन पर पड़े जन्म-जन्मांतर के संस्कारों के गहरे प्रभाव मिटने शुरू हो जाते हैं। इस तरह हम अपने ध्यान को परमात्मा की तरफ़ मोड़ लेते हैं। हमारे अंदर से सतगुरु का नूर चमकने लगता है और इस नूर का अनुभव करने के लिए प्यार और मेहनत करने की ज़रूरत है। हम अकसर प्रेम और मेहनत के बारे में एकसाथ नहीं सोचते पर जब कोई सचमुच निस्स्वार्थ भाव से हमारे लिए कुछ करे तो हम कह देते हैं, "यह तो असल में प्यार से की गई मेहनत थी।"

बड़े महाराज जी फ़रमाया करते थे कि दो रास्ते हैं–समर्पण का रास्ता और अभ्यास का रास्ता। आप फ़रमाया करते थे कि इन दोनों में से अभ्यास का रास्ता आसान है। चूँकि भजन–सिमरन हमें समर्पण की ओर ले जाता है इसलिए हमें इस कठिन मार्ग पर दृढ़तापूर्वक चलते रहना चाहिए। बेशक यह रास्ता आसान नहीं है, हम सब कुछ भूलकर सहज होकर भजन–सिमरन के इस उपहार का आनंद ले सकते हैं। समय आने पर हमारी यह कोशिश हमें समर्पण की ओर ले जाएगी। संत–सतगुरु हमें बार–बार यही समझाते हैं कि चलते रहो, अपनी तरफ़ से हमेशा पूरी कोशिश करो, थोड़ा और अधिक प्रयास करो जब तक कि पूर्ण समर्पण की अवस्था प्राप्त न हो जाए। जब हम समर्पण कर देते हैं तो वह हमें उस रूहानी ख़ज़ाने से भरपूर कर देते हैं, जिसे वह हमारे लिए सँभाले हुए थे।

फिर हमें अपने अंदर परमात्मा के सच्चे प्रेम का अनुभव होता है। हमारा काम उन्हें खोजना, उनके हुक्म का पालन करना, अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश करना, उनसे प्रेम करना और उनका सच्चा शिष्य बनना है। सतगुरु ने हमसे वायदा किया है कि हम अंदर जाने में सफल ज़रूर होंगे। जब हम एक बार उस आंतरिक प्रेम का अनुभव कर लेंगे तब हम सचमुच सत्संगी बन जाएँगे।

जीवन की दिव्य एकता

रूहानी मार्ग पर चलते हुए हम अकसर अपने जीवन के बारे में समझने के लिए बुद्धि का इस्तेमाल करते हैं। हमारी बुद्धि चीज़ों को वर्गों और श्रेणियों में बाँटती है। हम बुद्धि द्वारा चीज़ों को जाँचते हैं, परखते हैं और हर बात की वजह ढूँढ़ते हैं। असल में स्कूल में भी यही बातें हम अपने बच्चों को सिखाते हैं। हालाँकि ये हुनर पढ़ाई और कामकाज में तो बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं, लेकिन जब हम इन्हें रूहानियत में ले आते हैं तब ये प्राय: हमारे मार्ग में बाधा बन जाते हैं।

रूहानी मार्ग पर चलते हुए हम जीवन को श्रेणियों में बाँट लेते हैं। हम सोचते हैं कि या तो हम "मार्ग पर हैं" या "मार्ग से भटक चुके हैं।" हम ख़ुद को या तो "अच्छा सत्संगी" मानते हैं या "बुरा सत्संगी" और सोचते हैं कि क्या हमारा ध्यान तीसरे तिल पर है या दुनिया में फैला हुआ है। हममें से बहुत-से लोग ख़ुद को अच्छा सत्संगी तभी मानते हैं अगर वे सत्संग में जाते हैं, सेवा करते हैं, रोज़ ढाई घंटे भजन-सिमरन करते हैं और संतमत की ज़्यादा से ज़्यादा किताबें पढ़ते हैं। अगर हम अपने ख़ाली समय में संत-महात्माओं की बानी के शब्द सुनते हैं तो हम ख़ुद को और भी अच्छा समझने लगते हैं। लेकिन अगर हम सत्संग में नहीं जाते हैं, सेवा नहीं करते हैं या हर रोज़ पूरा समय भजन-सिमरन को नहीं देते हैं, तो ख़ुद को बुरे सत्संगी की श्रेणी में ले आते हैं। हमें दूसरों को भी श्रेणियों में बाँटने की आदत है कि उन्हें नामदान मिल चुका है या नहीं-वे "जिज्ञासु" हैं या दीक्षित।

हम सेवा करनेवालों को भी श्रेणियों में बाँट देते हैं जैसे ऊँचे दर्जे के या सतगुरु के क़रीबी सेवादार या नीचे दर्जे के सेवादार जिनकी सेवा हमारे हिसाब से उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसके अलावा हम उसी कार्य को सेवा मानते हैं जो सत्संग, डेरा से जुड़ा हो या "जिसका संबंध संतमत से हो।"

हालाँकि सतगुरु हमें इस नज़रिए से नहीं देखते। वह इस दुनिया में हमारी परख करने, हमें नीचा दिखाने या बाँटने के लिए नहीं आए हैं। वह हमें

अच्छे या बुरे, भजन–सिमरन करनेवाले या भजन–सिमरन नहीं करनेवाले, ऊँचे सेवादार या निम्न दर्जे के सेवादार जैसी श्रेणियों में नहीं बाँटते। रूहानी मार्ग पर ऐसी सोच और इस तरह के वर्गीकरण हमारे दायरे को सीमित कर देते हैं इसलिए ये लाभदायक नहीं होते। सतगुरु हमें रूहानी जीवों के रूप में देखते हैं जो इस दुनिया में संघर्ष कर रहे हैं। वह प्रेम और दया का संदेश देते हैं।

संत पलटू साहिब के वचन हैं:

संत बराबर कोमल दूसर को चित नाहिं॥
दूसर को चित नाहिं करैं सब ही पर दाया।
हित अनहित सब एक असुभ सुभ हाथ बनाया॥
कोमल कुसुमी चाह नहीं सुपने में दूषन।

पलटू साहिब

यह सच है कि इस दुनिया में सतगुरु जैसा कोई नहीं है। हालाँकि कई बार सतगुरु को हमारे साथ सख़्ती से पेश आना पड़ता है या फिर हमें वह सख़्त लग सकते हैं, लेकिन उनका मक़सद हमेशा हमारी सँभाल करना, हमें प्रोत्साहित करना और हमें हमारे दिव्य–घर जाने का मार्ग दिखाना होता है। वे हमारी गलतियों को नहीं देखते, बल्कि हमारे सामर्थ्य को देखते हैं। संत–महात्मा सब की भलाई चाहते हैं, वे करुणामय, कोमलचित्त और दया का रूप होते हैं।

हुज़ूर बड़े महाराज जी *परमार्थी पत्र*, भाग 2 में फ़रमाते हैं: "वे हमेशा हमारे साथ हैं–हमारे अन्दर हैं–और हमारी उसी तरह निगरानी करते हैं जैसे माँ अपने बच्चों की। जब तक हम तीसरे तिल के नीचे बैठे हैं तब तक हम उन्हें यह काम करते नहीं देख पाते। पर वे सदा अपना फ़र्ज़ अदा कर रहे हैं।"

हम अपने रूहानी सफ़र को संकीर्ण नज़रिए से देखते हैं, इसलिए हम उस कोमलता को महसूस नहीं कर पाते जिस कोमलता से सतगुरु हमारी

सँभाल करते हैं। हम उन्हें वह सब करते हुए नहीं देख पाते क्योंकि हम मन द्वारा बनाए इन तंग दायरों में ही उलझे रहते हैं। यहाँ तक कि हमारे द्वारा इस्तेमाल किए जानेवाले शब्दों जैसे सेवा, सेवादार और सत्संग के अर्थ भी सीमित हैं। अगर हम निस्स्वार्थ भाव से किसी की मदद कर रहे हैं तो हम सेवा कर रहे हैं और हम सेवादार हैं। यदि हम रूहानियत के बारे में चर्चा कर रहे हैं या परमार्थ से जुड़ रहे हैं तो हम सत्संग कर रहे हैं।

बाइबल के न्यू टेस्टामेंट में बुक ऑफ़ कुरिन्थिअन्ज़ में असीम प्रेम की परिभाषा दी गई है:

प्रेम धैर्यवान है, प्रेम दयालु है। यह ईर्ष्या नहीं करता, शेखी नहीं बघारता, अभिमानी नहीं होता। यह अशिष्ट नहीं होता, स्वार्थी नहीं होता, क्रोध नहीं करता और ग़लतियों का हिसाब नहीं रखता। प्रेम बुराई में नहीं, बल्कि सत्य में प्रसन्न होता है। यह हमेशा सुरक्षा प्रदान करता है, हमेशा विश्वास करता है, हमेशा सकारात्मक होता है और हमेशा क़ायम रहता है। प्रेम कभी विफल नहीं होता।

सतगुरु हमारी ग़लतियों का हिसाब नहीं रखते। वह हमें श्रेणियों में नहीं बाँटते। वह सदा हमारा साथ देते हैं, हम पर भरोसा रखते हैं और उम्मीद करते हैं कि हम अपने सच्चे घर की ओर रुख़ कर लेंगे। वह दयालु और धैर्यवान हैं। वह इस संघर्ष में हमारी मदद करने से कभी पीछे नहीं हटते। जैसा कि हुज़ूर बड़े महाराज जी *परमार्थी पत्र*, भाग 2 में फ़रमाते हैं:

मुझे अच्छी तरह मालूम है कि आपको संघर्ष करना है। कुछ रुकावटें आपके अन्दर हैं जिन्हें पार करना है और कुछ रुकावटें बाहरी हैं जिन्हें क़ाबू में लाना है, लेकिन आप यह सब काम कर सकते हैं। अगर आपको अन्दर गुरु में पूरा विश्वास है तो वह आपको हमेशा मदद देगा और अकसर जब आपके सामने सबसे ज़्यादा मुश्किल होगी और घोर अँधेरा होगा, तब आप देखेंगे कि आपके सामने प्रकाश आ जायेगा और आप मुश्किलों से आज़ाद हो जायेंगे। किसी भी कारण से निराश न हों।

सतगुरु कई वर्षों से हमसे कहते आए हैं कि हमें अपनी सोच के दायरे को खोलने की ज़रूरत है। जब हम ऐसा कर लेते हैं और वर्गों और श्रेणियाँ से आगे बढ़ जाते हैं, तो हमारा मन धीरे-धीरे शांत होने लगता है और सहज ही अंतर की ओर मुड़ने लगता है। जैसे-जैसे हमें प्रेम की मिठास का अनुभव होने लगता है, हम सतगुरु की दया-मेहर, महानता और विनम्रता का गुणगान करने लगते हैं। आख़िरकार हम रचयिता के और ज़्यादा शुक्रगुज़ार होते हैं जिसने हमें सब कुछ दिया है और हमें सभी जीवों में दिव्य एकता दिखाई देने लगती है।

जैसा कि परमात्मा चाहता है

आप अपने देश की राजनैतिक हलचलों के कारण बहुत परेशान नज़र आते हैं। मैं आपसे कहना चाहूँगा कि संसार कभी भी स्वर्ग नहीं बना है और न कभी बनेगा। इस संसार की घटनाओं को हम अपनी सीमित दृष्टि से देखते हैं, इसलिये हमें लगता है कि संसार में बहुत अन्याय हो रहा है। लेकिन सच तो यह है कि हर जीव अपने पिछले जन्मों के या इसी जन्म के अपने ख़ुद के कर्मों का पुरस्कार या दंड प्राप्त करते हुए सुख-दुःख भोग रहा है। सृष्टा बिना कारण के किसी को न तो पुरस्कार देता है और न दंड। "जैसा बोओगे, वैसा काटोगे"-यह इस संसार का एक ऐसा नियम है जिसमें कोई फेरबदल नहीं हो सकता। इसलिए इसे कोई नहीं बदल सकता। इस विधान को देखते हुए किसको दोषी ठहराया जाए?

इसके अलावा यह संसार रहने लायक़ सुख का स्थान कब रहा है? संसार का पिछला इतिहास पढ़ें तो आप पाएँगे कि यहाँ मारकाट और ख़ून-ख़राबा सदा से चला आ रहा है, यहाँ तक कि जिसे हम शांति काल कहते हैं उसमें भी हमें मानसिक तथा शारीरिक बीमारियों, निर्दयता, हत्या तथा अन्य अपराधों के रूप में कितने दुःख दिखाई देते हैं। केवल इसी लिए संत हमें इस 'भय के समुद्र' को हमेशा के लिए त्यागने और जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होने की सलाह देते हैं। अनंत आनंद के अपने धाम में वापस जाने

के लिए वे हमें केवल चाबी ही नहीं देते, बल्कि वे उस सुख के धाम तक पहुँचने में हमारी सहायता और मार्गदर्शन भी करते हैं, जहाँ से इस दुनिया में हमें वापस आने की ज़रूरत नहीं।

हर बात उसी तरह हो रही है जिस तरह परमात्मा चाहता है। उसकी आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। क़ुदरत की धारा को कोई नहीं रोक सकता। फिर, कुछ थोड़े-से लोग, चाहे उनके उद्देश्य कितने ही भले क्यों न हों, पूरे वेग से बहनेवाली इस धारा को कैसे पलट सकते हैं? बेहतर तो यह होगा कि इन बातों को इसी तरह छोड़ दें और इन्हें अपने क़ुदरती ढंग से चलने दें। संत सांसारिक मामलों में कभी दख़ल नहीं देते। ये सब बातें प्रभु की योजना के अनुसार होती रहती हैं। संत तो हमें यही समझाते हैं कि हम सामान्य जीवन बिताते हुए और अपने सारे सांसारिक कर्त्तव्यों को निभाते हुए, इन सबसे ऊपर उठें और भजन-सिमरन के द्वारा सांसारिक परेशानियों से छुटकारा पा लें।

प्रेम और भक्ति के साथ अपना भजन-सिमरन करते रहें और इस संसार की घटनाओं के बारे में सोच-सोचकर अपने मन को उनमें न उलझने दें। इससे कोई लाभ नहीं होगा। चाहे आपके उद्देश्य कितने ही भले क्यों न हों, यदि आप इनमें उलझेंगे तो इससे और तो कुछ न होगा, केवल आपकी आध्यात्मिक प्रगति में बाधा पड़ेगी।

महाराज चरन सिंह जी, *प्रकाश की खोज*

सेवा–बदलाव का ज़रिया

कई साल पहले सतगुरु अचानक आने वाले थे। उनके इंतज़ार की ख़ुशी में, हम कुछेक सेवादार नए 'साईंस ऑफ़ द सोल स्टडी सेंटर' के आधे बन चुके हिस्से में कुर्सियों को व्यवस्थित करने की अपनी सेवा में लगे थे। वह दिन कितना भाग्यशाली था!

अचानक से एक आदमी बीच के गलियारे में से तेज़ी के साथ चलता हुआ आया और रौब जमाते हुए बोलने लगा जिस कारण वहाँ की शांति एकदम से भंग हो गई। "यहाँ से बाहर निकलो! इसी वक़्त इस इमारत से निकल जाओ और फिर यहाँ कभी मत आना वरना तुम्हें यहाँ से बाहर निकाल दिया जाएगा!"

उस सेवादार ने तेज़ी से अपनी बाजुओं को ऐसे उठाया मानो वह हमें धकेल कर बाहर निकाल देगा जैसे कि यह इमारत उसी की हो।

इस भयावह घटना के बाद एकाएक बहुत कुछ हुआ जिससे वहाँ का माहौल बिगड़ गया। एक जिज्ञासु जो हमारी मदद कर रहा था, जल्दी से बाहर निकल गया, शायद कभी वापस न आने के लिए। एक सेवादार फूट–फूट कर रोने लगा जिसे अभी–अभी नामदान मिला था और वह घण्टों रोता रहा। और मैंने, इस मार्ग के बारे में अपने तीस साल के ज्ञान के आधार पर सतगुरु के फ़ैसले पर सवाल खड़े कर दिए...

"मैं बार–बार अपने मन में उनसे यही सवाल किए जा रहा था कि आप इतने कठोर लोगों को इतने ऊँचे पदों पर क्यों बिठाते हैं?" आपकी संगत में इतने भले, समर्पित व अनुभवी लोग हैं, उन्हें सेवा के लिए इन पदों पर क्यों नहीं रखा जाता ताकि उनके शांतिपूर्ण स्वभाव से इन इमारतों में अच्छा माहौल बने जो यहाँ आनेवाले हर व्यक्ति को सुकून दे। क्या यहाँ पर ऐसे प्रसन्नचित्त जीवों को लाना बेहतर नहीं होगा जो जहाँ भी जाते हैं वहाँ के माहौल को ख़ुशनुमा और सकारात्मक बना देते हैं।

और मैं मन ही मन बड़बड़ाता गया कि जो इमारतें प्रेम, प्रेरणा और निस्स्वार्थ सेवा का केंद्र होनी चाहिएँ वे पदवी के अभिमान, अपना हक़ जमाने, राजनैतिक चालों और सत्ता की इच्छा से ग्रस्त क्यों हो जाती हैं? लेकिन फिर ख़याल आया कि क्या कोई संत-सतगुरु कभी भी कुछ भी ऐसा करते हैं जिसके पीछे कोई रूहानी मक़सद न हो?

बच्चों की एक किताब 'द लिटिल सोल एण्ड द सन' में एक आत्मा जो परमात्मा के साथ रहती है, परमात्मा से कहती है कि मैं ख़ुद को 'क्षमा' के रूप में अनुभव करना चाहती हूँ। परमात्मा उसे कहते हैं कि ऐसा करने के लिए उसे प्रकाश की दुनिया को छोड़कर नीचे अंधकार की दुनिया में जाना पड़ेगा। उस आत्मा से प्रेम के कारण, दूसरी आत्मा ने बहुत बड़ा त्याग करते हुए नीचे अंधकार की दुनिया में आने और उसके साथ कुछ बुरा करने का प्रस्ताव रखा ताकि उस आत्मा को 'क्षमा' का अनुभव हो सके। त्याग करने वाली आत्मा ने सिर्फ़ यह माँग रखी कि उस बुराई की घड़ी में वह आत्मा यह याद रखे कि यह सब उसने प्यार की ख़ातिर किया था। वह आत्मा आभार व्यक्त करते हुए यह सब याद रखने का वायदा करती है और फिर वह इस 'क्षमा' को अनुभव करने के चुनौतियों से भरे सफ़र के लिए निकल पड़ती है और इसके साथ इस कहानी का अंत हो जाता है।

यहीं से हमारी सेवा की कहानी शुरू होती है...

सतगुरु हमें सेवा करने का मौक़ा देते हैं, हम इसे अपने कायाकल्प का ज़रिया समझ सकते हैं। और इस तरह हम मिल-जुलकर इमारतों का निर्माण करने, बाग़-बगीचे की देख-रेख करने, किसी किताब को छपवाने या ऐसी ही किसी अन्य सेवा में लग जाते हैं। अगर हमारे पास वे आँखें होतीं जो माया के इन पर्दों से परे देख पातीं तो हम देहधारी सतगुरु के दिव्य ज्ञान और करनी को समझ सकते और उनके हर एक सेवादार के भीतर हो रहे बदलाव को भी। मिल-जुलकर सेवा करना रूहानी तौर पर उन्नत होने का सशक्त साधन है। इससे हम और अधिक विनम्र बनते हैं जब हमें धीरे-धीरे यह एहसास होने लगता है कि शब्द-गुरु ही असल में कर्ता हैं जिन्होंने हमें

सेवा में ये अलग-अलग भूमिकाएँ अदा करने के लिए दी हैं। वह हमारे ज़रिए ख़ुद ही सेवा कर रहे हैं।

एक बार किसी ने कहा था कि सेवा में अकसर भँवरा होता है। हम मधुरता, रोशनी, फूल और ख़ुशबू की खोज में सेवा करने जाते हैं लेकिन कभी-कभी ऐसा डंक बजता है कि अपनी जान बचाने के लिए भागते हैं। किसी ने सही कहा है कि फूलों की तरह सेवा में भी भँवरा बैठा है।

हाँ, हम सब विनीत और ख़ुशनुमा लोगों के साथ सेवा करना चाहते हैं जो प्यार से शाबाशी देकर हमारे झूठे अहंकार को बढ़ावा दें। मगर ऊँचे पदों पर बैठे सेवादारों के कठोर शब्द और निर्दयी व्यवहार बहुत-से लोगों में तेज़ी से बदलाव ला सकते हैं। ऐसे सख़्त सेवादारों के साथ हमें एहसास होता है कि परिस्थिति को सँभालने के लिए हमें पहले से भी अधिक प्यार और विनम्रता से सेवा करनी पड़ेगी।

अगर हम सेवा को छोड़ने के बजाय हिम्मत के साथ सेवा में डटे रहें तो हमारा प्रेम और भी ज़्यादा बढ़ सकता है। हम ज़्यादा सहनशील, समझदार बन जाते हैं और हर चीज़ को स्वीकार करने लगते हैं। हम अंहकारवश प्रतिक्रिया देने के बजाए आत्मिक गुण ग्रहण करके सहजता और सहनशीलता से उत्तर देना सीख जाते हैं। हम यह जानने लगते हैं कि ऐसी कोई भी परिस्थिति नहीं जिसे प्रेम द्वारा जीता न जा सके।

हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी प्रकाश की खोज पुस्तक में फ़रमाते हैं: "न तो कोई व्यक्ति हमारा भला या बुरा कर सकता है और न ही कोई हमारा अपमान या सम्मान कर सकता है। सतगुरु अंदर से डोर खींचते रहते हैं और हमारे कर्मों के अनुसार हमारे प्रति लोगों से व्यवहार कराते रहते हैं।"

श्री स्वामी सच्चिदानंद कहते हैं:

> *"परमात्मा की मर्ज़ी के बिना हमें कोई दु:ख-तक़लीफ़ नहीं दे सकता। ये लोग परमात्मा के लिए निमित्त मात्र हैं। परमात्मा हमें कोई अनुभव देने के लिए इनका इस्तेमाल करता है। यह सब हमें सिखाने और हमारे भले*

के लिए होता है। अगर हम ऐसी सोच रखते हैं तो जो लोग हमें लगता है कि हमें दु:ख-तक़लीफ़ दे रहे हैं, हम उनके लिए मन में कोई बुरी भावना नहीं रखेंगे। बल्कि अगर हम उस व्यक्ति को परमात्मा का ज़रिया मानेंगे जिसके द्वारा परमात्मा हमें सिखाने की कोशिश कर रहा है और सोचेंगे कि वह बहुत अच्छा इनसान है तो मन में कोई बुरी भावना नहीं रहती और फिर कोई इनसान बुरा नहीं रहता। फिर प्यार करना आसान हो जाता है।"

गाइडिड रिलैक्सेशन एण्ड ऐफर्मेशन्ज़ फ़ॉर इन्नर पीस

शायद कष्ट देनेवाले के पीछे एक फ़रिश्ता, एक निर्मल आत्मा होती है जो डरावना चोला पहनकर, एक ख़लनायक की भूमिका निभाकर हमारी आत्मा का भला करती है। जिन लोगों को लेकर हम कड़ी प्रतिक्रिया देते हैं शायद उन्हें हमारे जीवन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए हमारे सतगुरु द्वारा भेजा गया हो। हो सकता है कि वे हमारे अंदर छिपी हुई मलिनता को देखने में हमारी मदद करते हों ताकि हम उस मलिनता से छुटकारा पा सकें। हो सकता है कि वे ऐसे काँटें हों जिनके द्वारा सतगुरु हमें अंदर से धीरे-धीरे हमारे अवगुणों से मुक्त कर रहे हों? हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी *स्पिरिचुअल डिस्कोर्सेज़,* वॉल्युम I समझाते हैं:

जो कुछ भी मालिक की तरफ़ से आता है अगर आप उसे स्वीकार कर लें, तो वह दिव्य बन जाता है; बेइज़्ज़ती इज़्ज़त बन जाती है, कड़वाहट मिठास बन जाती है और गहन अँधकार निर्मल प्रकाश बन जाता है। हर चीज़ परमात्मा से आती है और दिव्य बन जाती है, जो कुछ भी होता है उसमें परमात्मा का प्रकाश नज़र आता है। जब इनसान का मन इस तरह से सोचने लगता है, फिर हर चीज़ से एक जैसा रस आने लगता है और इस तरह जीवन के सबसे कड़वे पलों और सर्वश्रेष्ठ सुखों के पीछे परमात्मा की दया नज़र आती है।

आओ, ऐसे लोगों को भेजने के लिए सतगुरु का शुक्रिया अदा करें, जिनके बोल कड़वे और व्यवहार सख़्त लगता है, जो हमारे कर्मों के बचे

हुए गहरे दाग़ों को धोने में हमारी मदद करते हैं। असल में वे हमें कष्ट पहुँचाने वाले न होकर वे फ़रिश्ते हैं जो हम तक हमारे सतगुरु का यह संदेश पहुँचाते हैं कि हम सच्चे सेवादार बनें। सच्चा सेवादार कौन है? ऐसा निर्मल स्रोत जिसके ज़रिए उस शब्द रूपी 'सतगुरु' की दया-मेहर और प्रेम, निस्स्वार्थ सेवा की धारा के रूप में निरंतर बहता है।

इक दीन भिखारी हूँ चिथड़ों में

पनाह ली है मैंने तेरे शाही दरबार में,
इक दीन भिखारी हूँ चिथड़ों में।
तू है मुजस्सिम जलाल और फ़ज़ल का,
मैं सिर्फ़ जहालत और शिक़ायतों से भरा हूँ।
बेचैन हूँ, मोह पाश में उलझा हूँ,
ख़ुद ही से ऊब चुका हूँ।
तुझसे किए वायदे और फिर
उन्हीं को तोड़कर तेरे दर पर आ गया हूँ।
अपनी ख़सलतों से वाक़िफ़ हूँ, तेरे इश्क़ के भरोसे आ गया हूँ।
ऐ उन गुनाहों को जाननेवाले –
कर चुका हूँ जो और जो करने वाला हूँ –
छोड़ न देना तू मुझे बेसहारा।
कोई औक़ात नहीं है मेरी, तू ही तो सब कुछ है।
पहुँच चुका हूँ मैं नाउम्मीदी के उस मक़ाम पर–
दिला दे मुझे यह यक़ीन,
कि मैं ख़ुद को तेरे हवाले कर सकूँ।

नोबडी, सन ऑफ़ नोबडी:
पोइम्ज़ ऑफ़ शेख़ अबू सईद अबिल ख़ैर

मनुष्य होना ही सबसे बड़ा उपहार है

मनुष्य–जन्म में हमें परमात्मा की खोज करने और उसे जानने का अवसर मिलता है। आदिकाल से ही जीवन के मायने, सौंदर्य और ईश्वर की खोज हमें बेचैन कर रही है। हमने हर युग में इस प्यास को धर्म, देवी–देवताओं की कथा–कहानियों और दंत–कथाओं व दिव्य–पुरुषों के यशोगान द्वारा बुझाया। उस दिव्यता से मोहित होकर हम दिव्य लोकों की ओर देखते हैं और हमें अपनी कमियों–कमज़ोरियों का एहसास होता है फिर हम सहज ही परमात्मा की तरफ़ रुख़ कर लेते हैं।

संत–महात्मा हमें समझाते हैं कि जिस परमात्मा की हम खोज कर रहे हैं, वह हमारे इसी शरीर के भीतर है जिसमें हम रहते हैं, स्वाँस लेते हैं और जिससे हम प्यार करते हैं। वे बताते हैं कि यह मनुष्य जीवन अनमोल है क्योंकि इसी के द्वारा हम मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी *सन्तमत दर्शन* में फ़रमाते हैं:

> *मनुष्य–जन्म चौरासी लाख योनियों के बाद, मालिक की अति दया–मेहर और बख़्शिश से मिलता है। यह हमें परमात्मा की कृपा से मिला है ताकि इस मौक़े का लाभ उठाकर, उसकी भक्ति करके मुक्त होकर इस संसार के सब दुःखों से छुटकारा पा लें। मनुष्य जीवन इस जेलख़ाने से निकलने का एक–मात्र साधन है।*

फिर भी, हम ऐसे विचरते हैं जैसे हमें यह पता ही न हो कि हमारे पास कितनी अनमोल दात है। हमारे हाथ में जीवन रूपी अमूल्य रत्न है, मगर फिर भी हम संसार के मायामय शक़्लों और पदार्थों को हासिल करने में इसे व्यर्थ गँवा देते हैं।

अमेरिकी कवियित्री मेरी ऑलिवर अपनी कविता "द समर डे" में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछती हैं:

मुझे बताओ, तुम क्या करने वाले हो
अपनी एक ही अद्‌भुत और अनमोल ज़िंदगी के साथ?

हम इस अद्‌भुत और अनमोल ज़िंदगी में मनुष्य-शरीर रूपी उपहार का उपयोग कैसे करेंगे? यह सोचने का विषय है, क्योंकि हम रोज़मर्रा की तुच्छ प्राप्तियों के लिए अपना जीवन खो देते हैं। संत-महात्मा समझाते हैं कि अनगिनत जन्म लेकर हर योनि में पैदा होने के बाद, मनुष्य के रूप में इस संसार में वापस आने का सौभाग्य मिलने पर ही हमें अपने उद्‌देश्य को पूरा करने का अवसर प्राप्त होता है। इस मनुष्य-जन्म में हम अपने मूल स्रोत में वापस समा जाने की कोशिश कर सकते हैं, जहाँ वापस लौटने के लिए हमारी आत्मा तड़पती है।

फ़ारसी कवि हाफ़िज़ अपनी कविता "ए कुशन फ़ॉर योर हेड" में हमारी इस दयनीय स्थिति जो कि परमात्मा से जुदाई है जिसे वह दुनिया का सबसे कठिन कार्य कहते हैं, पर गहरी सहानुभूति प्रकट करते हुए हमें सुकून देने के लिए फ़रमाते हैं:

अभी के अभी सिर्फ़ वहीं बैठ जाओ,
कुछ मत करो,
सिर्फ़ आराम करो।
ख़ुदा से तुम्हारी जुदाई,
उस महबूब से तुम्हारा बिछुड़ना,
इस दुनिया का सबसे कठिन काम है।
मुझे तुम्हारे लिए खाने की थालियाँ लाने दो
और तुम्हारे पीने के लिए कुछ ऐसा
जो तुम्हें पसंद हो।
तुम मेरे इन कोमल शब्दों का इस्तेमाल

अपने सिर के नीचे
तकिए की तरह कर सकते हो।

द गिफ़्ट: पोइम्ज़ बाय हाफ़िज़, द ग्रेट सूफ़ी मास्टर

स्पष्ट है कि आत्मा अपने स्रोत से बिछुड़ जाने के कारण दु:खी रहती है। इसे अकेलापन महसूस होता है, इसे कभी शांति नहीं मिलती, क्योंकि अपने इर्द-गिर्द की जिन चीज़ों से यह ख़ुशी पाना चाहती है वे सब निरंतर बदल रही हैं।

बी ह्यूमन दैन डिवाइन नामक पुस्तक में लेखक प्राचीन यूनानी दार्शनिक प्लेटो के उस विचार का उल्लेख करते हैं जिसे वह "पंखों का पुन: उगना" कहते हैं। इस विचार के अनुसार, आत्मा के पास पहले पंख हुआ करते थे और वह "दिव्य लोक में स्वतंत्र होकर उड़ान भरती थी," लेकिन दी गई दातों की क़द्र न करने के कारण आत्मा ने अपने पंख खो दिए और यह पृथ्वी पर गिर गई। अब, माया के जाल और स्थूल शरीर के पिंजरे में फँसी होने के कारण यह निरंतर ऊपर देखती है और अपने निज-घर जाना चाहती है।

द *तिब्बतन* बुक *ऑफ़* द डेड पुस्तक में प्राचीन बौद्ध धर्म-ग्रंथ हमें हमारे असल स्वरूप की याद दिलाते हैं: "हे उच्च कुल में जन्मे, हे गौरवशाली मूल के जीव, अपने वास्तविक प्रकाशमय स्वरूप को याद कर, जो मन का निज स्वरूप है। इस पर भरोसा कर। इसकी तरफ़ वापस लौट आ। यही हमारा घर है।" दुर्भाग्यवश, हम अपने निज-घर को भूल गए हैं। लेकिन हमारे सतगुरु हमें उसकी याद दिलाने के लिए आए हैं।

अपने स्रोत की ओर लौटने के इस सफ़र में हमें कहीं दूर नहीं जाना पड़ता। वापसी का रास्ता हमारे अंदर ही है और हमारे सतगुरु हमें समझाते हैं कि इस पर कैसे चलना है। यह बहुत ही सरल है; इसके लिए न तो भौतिक या मानसिक उपलब्धियों की ज़रूरत है, न ही ब्रह्मांड की जटिलताओं को समझने या सुलझाने की। हमें बस एकांत में बैठकर ख़ामोशी से पाँच पवित्र नामों का जाप करना है। यह हमारे रूहानी अभ्यास का सिमरन वाला भाग है, जिसमें हम पवित्र नामों को निरंतर दोहराते हैं, जो हमें संसार से उपराम

होने में मदद करता है। अपनी रूहानी साधना के भजन वाले हिस्से में हम अपने अंदर शब्द–धुन सुनने की कोशिश करते हैं।

सन्तमत दर्शन पुस्तक में हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी हमें इस जीवन का सर्वोत्तम उपयोग करने की प्रेरणा देते हैं:

हमें अपने ख़्याल को शरीर की ओर से हटाना चाहिये। हमारा लक्ष्य केवल सुख–सुविधाएँ हासिल करना नहीं है, बल्कि शरीर के अन्दर सबसे अनमोल वस्तु–शब्द धुन–को खोजकर उससे जुड़ना है। तभी हम मनुष्य–जन्म का उद्देश्य पूरा कर सकते हैं। मनुष्य–जीवन का महत्त्व हमें अच्छी तरह समझना चाहिये। पुण्यों और श्रेष्ठ कर्मों के फलस्वरूप हमें मनुष्य–जन्म मिला है। इस जीवन को व्यर्थ के काम–धन्धों में गँवाना ठीक नहीं।

इंसान होने के नाते हमें विवेक दिया गया है भाव सही और गलत में फ़र्क़ करने का सामर्थ्य जो हमें सत्य और अच्छाई की ओर ले जाता है। इसी विवेक के साथ हम यह चुनाव करते हैं कि हम अपने जीवन में आनेवाली चुनौतियों का सामना कैसे करेंगे, किस चीज़ को स्वीकार करेंगे, किस चीज़ को जाने देंगे और अपनी शक्ति किस तरफ़ लगाएँगे। सतगुरु हमें याद दिलाते हैं कि हमें अपनी ज़िंदगी को व्यर्थ के कार्यों में बरबाद नहीं करना चाहिए और अपनी प्राथमिकताओं को तय करना चाहिए कि हमारे लिए सबसे ज़रूरी क्या है और किस चीज़ पर ध्यान देना है। किन गतिविधियों को छोड़ देना है और कौन–सी चिंताओं को छोड़ना है, ताकि हम अपना भजन–सिमरन अधिक सजग होकर और पूरा ध्यान लगाकर कर सकें?

अगर हम डगमगा जाएँ और भजन–सिमरन से चूक जाएँ या इसे पूरे ढाई घंटे न दे पाएँ, तो हमें शिद्दत से पुन: प्रयास करना चाहिए। कल हम फिर से नई शुरुआत कर सकते हैं, ख़ुद को यह याद दिलाते हुए कि अगर हम दृढ़ लगन से प्रयास करें, तो हमें सफलता ज़रूर मिलेगी।

मनुष्य–जन्म के महत्त्व को समझते हुए, हम अपने जीवन, अपनी आत्मा और अपने सतगुरु के साथ एक वायदा करते हैं कि हम अपने हर दिन और हर स्वाँस को अपनी ज़िंदगी के मक़सद को पूरा करने में लगाएँगे।

यह सब हम धन–दौलत इकट्ठी करके या दुनिया में नाम–शोहरत कमाकर नहीं बल्कि अपने भजन–सिमरन, अपने सतगुरु और शब्द के लिए समर्पित होकर करेंगे।

मनुष्य होना ही सच्चा उपहार है। इसके ज़रिए ही हम प्रेम को जान सकते हैं; रो सकते हैं, हँस सकते हैं और करुणा महसूस कर सकते हैं; और प्रकृति की अनुपम सुंदरता की सराहना कर सकते हैं। इस सब से बढ़कर, हम अपने सतगुरु के प्रेम को जान सकते हैं, उस अभ्यास को कर सकते हैं जो वह हमें सिखाते हैं और अपने निज–घर लौट सकते हैं। इससे बढ़कर कोई अन्य नियामत नहीं है।

सबसे ज़बरदस्त परिवर्तन?

क्या हमने कभी अपने गिरेबान में झाँका है और हैरान होकर यह सोचा है कि हम कैसे कभी इतने निर्मल बन पाएँगे कि रचयिता के शब्द के निर्मल प्रकाश और ध्वनि में लीन हो सकें क्योंकि हम तो सांसारिक इच्छाओं, आलस्य, बुरी आदतों और प्रलोभनों से भरे हुए हैं। सौभाग्य से, हम अपने सतगुरु के पास जाकर अपना खोया हुआ आत्मविश्वास फिर से पा सकते हैं और अपनी इच्छाओं को नई दिशा देकर अपने दिव्य स्वरूप को खोजने की कोशिश कर सकते हैं। अपने आलस्य को प्रकाश में बदलने की संभावना से हमारे भरोसे और आत्म-विश्वास को नई गति मिलती है।

इस भौतिकता और आलस्य से निकलकर प्रकाश और ध्वनि के मंडलों में पहुँचने की हमारी यात्रा आधुनिक विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण खोज से मिलती-जुलती है। आइंस्टीन से पहले भौतिक विज्ञान में पदार्थ (द्रव्यमान) और ऊर्जा को अलग-अलग माना जाता था। लेकिन उनके सूत्र $E=mc^2$ (ऊर्जा= पदार्थ × प्रकाश की गति का वर्ग) ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रकृति में पदार्थ और ऊर्जा की समानता है। उन्होंने पदार्थ और ऊर्जा के संबंध के बारे में इनसान की सोच को पूरी तरह से बदल दिया। दरअसल, उन्होंने बताया कि पदार्थ भी ऊर्जा ही है और पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है।

सबसे बुनियादी स्तर पर आइंस्टीन का सूत्र यह बताता है कि ऊर्जा और पदार्थ एक-दूसरे में बदले जा सकते हैं; वे एक ही तत्त्व के दो अलग-अलग रूप हैं। सही परिस्थितियों में ऊर्जा को पदार्थ में और पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है। लेकिन हम लोग इसे इस तरह नहीं देखते-आख़िर कैसे प्रकाश की एक किरण और फ़र्नीचर जैसे कि मेज़ एक ही चीज़ के विभिन्न रूप हो सकते हैं? यह समझ पाना मुश्किल है, लेकिन सच तो यह है कि अगर एक छोटी-सी पिन को पूरी तरह ऊर्जा

में बदल दिया जाए, तो उसमें उतनी ही शक्ति होगी जितनी हिरोशिमा पर गिराए गए परमाणु बम में थी।

इसी तरह, जब हम अपनी आध्यात्मिक यात्रा शुरू करते हैं, तो हमें संदेह होता है कि इतनी सारी सांसारिक इच्छाओं के साथ यह स्थूल शरीर उन ऊँचे मंडलों तक कैसे पहुँच सकता है जिनकी चर्चा संत-महात्मा करते हैं। लेकिन जैसे कि आइंस्टीन ने प्रमाणित किया कि स्थूल पदार्थ कोई स्थायी चीज़ नहीं है और उसे ऊर्जा में बदला जा सकता है तथा इसी तरह ऊर्जा को स्थूल पदार्थ में बदला जा सकता है, वैसे ही सतगुरु–जो रूहानी वैज्ञानिक होते हैं–हमें बताते हैं कि हमें ख़ुद में जो कमियाँ, आलस्य और कर्मों का बोझ नज़र आता है, ये भी स्थायी नहीं है, इन्हें बदला जा सकता है। हम शब्द की शक्ति में परिवर्तित हो सकते हैं क्योंकि शब्द की दिव्य शक्ति पहले से ही हमारे भीतर मौजूद है–ठीक वैसे ही जैसे पदार्थ के छोटे-से अंश में भी असीम ऊर्जा छिपी होती है। संत-महात्मा समझाते हैं कि जो आत्मा शब्द से जुड़ जाती है, वह अकल्पनीय सुंदरता, आनंद और प्रकाश का अनुभव करती है।

सतगुरु रूपी रूहानी वैज्ञानिक से मिलाप हो जाने से पहले हम यह सोचते थे कि हमारी ख़ुद की छोटी-सी हस्ती, संसार की बाक़ी सभी चीज़ों से अलग है जैसे कि ब्रह्मांड, परमात्मा और उन रूहानी मंडलों से जिनके बारे में हम सुनते थे। लेकिन सतगुरु ने हमें बताया कि अपने ही शरीर को प्रयोगशाला बनाकर दो चरणों वाला एक प्रयोग करना है जो हमारी पुरानी मान्यताओं को ग़लत सिद्ध कर देगा और जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण को पूरी तरह से बदल देगा।

इस प्रयोग को करने के लिए दिए गए निर्देश सरल थे: शांत होकर बैठो, सिमरन करो और फिर शब्द-धुन को सुनो। भजन-सिमरन का अधिकतर समय, कम से कम शुरू में, सिमरन करने में बिताया जाना चाहिए। लेकिन इन निर्देशों की सरलता के कारण हम अकसर उलझन में पड़ जाते हैं और जल्दी निराश भी हो जाते हैं। हमें लगता है कि जब सब कुछ इतना सरल

है, तो हम अपने लक्ष्य को बहुत जल्दी और आसानी से पूरा कर लेंगे। हम यह नहीं समझ पाते कि चाहे यह युक्ति सरल है, लेकिन प्रयोगशाला में किए जानेवाले परीक्षण की तरह इसकी प्रक्रिया भी धीमी है, इसके लिए कड़ा परिश्रम करना पड़ता है और यह अत्यंत प्रभावशाली होती है। भले ही इसमें केवल दो चरण हों, पर इस प्रयोग के अंत में हम अद्‌भुत रहस्यों को जान लेते हैं। इस खोज द्वारा हमारा नाता सीधे उस निर्मल और पूर्ण परमात्मा से जुड़ जाता है।

हालाँकि भजन-सिमरन के लिए दिए गए निर्देश बहुत सरल हैं, लेकिन रूहानी कायापलट इतना आसान नहीं है। हम आदतों और आलस्य के शिकार हैं, क्योंकि हमारे विचार और इच्छाएँ हमें इस संसार से बाँध कर रखती हैं। जैसे पदार्थ में छिपी ऊर्जा को बाहर निकालने के लिए अत्याधिक प्रयास करना पड़ता है, वैसे ही हमें भी धीमी गति से होने वाले इस क्रमिक कायापलट के लिए अपनी तरफ़ से अपना श्रेष्ठ देने और अधिकतम प्रयास करने के लिए तैयार रहना चाहिए। केवल तभी हम इस प्रयोग द्वारा अपने वास्तविक स्वरूप और अपने दिव्य स्रोत की खोज में सफल होने की आशा रख सकते हैं।

इस प्रयोग और हमारे कायापलट की प्रक्रिया को ऊर्जा प्रदान करनेवाली शक्ति है प्रेम और विरह। मीराबाई ने अपनी कविता में इस भावना को इस प्रकार व्यक्त किया है:

मोहे लागी लगन गुरु-चरनन की।
चरन बिना कछुवै नहिं भावै, जग-माया सब सपनन की॥
भवसागर सब सूखि गयौ है, फिकर नहीं मोहि तरनन की॥
मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, आस वही गुरु-सरनन की॥

प्रेम और विरह की भावना द्वारा किया जानेवाला भजन-सिमरन इस धरती पर कायापलट का सबसे प्रभावशाली साधन है। यह उस भौतिक परिवर्तन से भी कहीं अधिक अद्‌भुत और ज़बरदस्त है जिसमें पदार्थ को

ऊर्जा में बदला जाता है। यही मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य है। इस मनुष्य–शरीर रूपी प्रयोगशाला में यह महान प्रयोग होता है—जहाँ मानव रूपी स्थूल पदार्थ को विशुद्ध ऊर्जा अर्थात् अनाहत नाद–शब्द–में बदला जाता है। हुज़ूर महाराज सावन सिंह जी *परमार्थी पत्र,* भाग 2 में हमें इस बात का आश्वासन देते हुए फ़रमाते हैं:

प्रकाश और शब्द दोनों तीसरे तिल में मौजूद रहते हैं...तीसरे तिल में सब कुछ है, जिसकी शान और महिमा का अन्दाज़ा हम कल्पना के ज़रिये या सपने में भी नहीं कर सकते। ख़ज़ाना आपके अन्दर है और वहाँ आपके लिए ही रखा हुआ है। आप जब भी अन्दर जायेंगे, उसको पा सकेंगे। आप मेरी बात मानिए और हमेशा के लिए यह समझ लीजिए कि हर एक चीज़–यहाँ तक कि सिरजनहार भी आपके अन्दर है और जिस किसी ने उसको प्राप्त किया है, तीसरे तिल के अन्दर जाकर प्राप्त किया है।

इस कायापलट के पीछे हमारे सतगुरु होते हैं। वह हमें समझाते हैं कि इस प्रयोगशाला (तीसरे तिल) में प्रवेश कैसे करना है और वहाँ क्या करना है। वह हमें नामदान देकर हमारा मार्गदर्शन करते हैं और इस प्रक्रिया के दौरान वह हमारे भीतर प्रेम और विरह रूपी ऊर्जा भर देते हैं जो इस स्थूल शरीर में इकट्ठी ऊर्जा को शब्द रूपी शक्ति में बदल देती है।

हम केवल यह शरीर नहीं हैं–हम तो स्वयं परमात्मा का अंश हैं। यही हमारी वह अद्भुत सामर्थ्य है, जो पदार्थ के भीतर छिपी क्षमता की तरह केवल ऊर्जा में परिवर्तित होने के इंतज़ार में है।

प्रयोग सबसे अच्छे और सटीक परिणाम एयर टाइट ट्यूब (airtight tube) या नियंत्रित वातावरण में ही देते हैं। ठीक इसी प्रकार, हमारा रूहानी प्रयोग और कायापलट भी ऐसे नियंत्रित वातावरण में संभव है जिसमें सारे विचार समाप्त हो जाएँ। डॉ. जूलियन जॉनसन अपनी पुस्तक *अध्यात्म मार्ग* में विस्तारपूर्वक इस बारे में समझाते हैं:

> *जब मन इधर-उधर भटकता है, तो सिमरन का जाप इसे फिर से केंद्र पर ले आता है। वह बाहरी जगत् को पूरी तरह भुला देता है। इस उद्‌देश्य की पूर्ति के लिये जिन साधनों से भी सहायता मिले, उन्हें अपनाया जा सकता है। परंतु सतगुरु हमें सर्वश्रेष्ठ साधन बताते हैं। सतगुरु द्वारा बताये साधन से कोई अन्य साधन बेहतर नहीं हो सकता। यह ऐसा साधन है जो अनगिनत वर्षों से जाँचा-परखा गया है और कसौटी पर खरा उतरा है। जब तक मन बाहरी संसार की वस्तुओं में अटका हुआ है, तब तक वह उच्च लोकों में प्रवेश नहीं कर सकता। इसी लिये सतगुरु बाहरी जगत् के नौ द्वारों को बंद करने का उपदेश देते हैं।*

हमें बताया जाता है कि सिमरन के ज़रिए अपने ध्यान को तीसरे तिल पर स्थिर करना भजन-सिमरन के इस वैज्ञानिक प्रयोग की युक्ति है।

जैसे प्रयोगशाला में खोज पूरी करने में दशक न भी लगें पर कुछ वर्ष तो लग ही जाते हैं, वैसे ही रूहानी कायापलट भी धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा और सूक्ष्म ढंग से होता है। परंतु इसका नतीजा अत्यंत प्रभावशाली होता है, जो किसी चमत्कार से कम नहीं होता। हमारा संसार से जुड़ा तुच्छ-सा आपा, जो सांसारिक इच्छाओं और कार्यों में व्यस्त रहता है, शब्द रूपी शक्ति में बदल जाता है। इस कायापलट के लिए प्रेम और विरह के साथ विचार-रहित प्रयोगशाला में निरंतर भजन-सिमरन करना ज़रूरी है, जहाँ पर हम स्थूल शरीर से शब्द रूपी विशुद्ध शक्ति बन जाते हैं।

जब भी हम भजन-सिमरन में बैठते हैं, तब हम वह सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे होते हैं जो केवल मनुष्य ही कर सकता है। हम इस धरती के सबसे ताक़तवर और भयंकर शत्रु-मन-को क़ाबू में करने का प्रयास कर रहे होते हैं और फिर हम मनुष्य-जन्म के सर्वोच्च उद्‌देश्य को प्राप्त कर लेते हैं जोकि परमात्मा की पहचान करना है। हम स्थूल शरीर में रहते हुए मरने का अभ्यास कर रहे होते हैं, जबकि हम शब्द की प्रेरणादायक शक्ति के दायरे में जीवित होते हैं।

सबसे ज़बरदस्त कायापलट तब होता है, जब हम परमात्मा के साथ अपनी एकता का अनुभव करना शुरू कर देते हैं। तब हमें अद्‌भुत रूहानी अनुभव होता है जो वैज्ञानिक सत्य के समान है: पदार्थ और ऊर्जा एक ही हैं। हमारा तुच्छ, अहं से भरा आपा और हमारा निर्मल, दिव्य स्वरूप एक ही है और यह दिव्य स्वरूप हमारे इसी आपे के भीतर है। उपयुक्त परिस्थितियों और सही वैज्ञानिक की निगरानी में, एक रूप को दूसरे में परिवर्तित किया जा सकता है।

दिल से की गई प्रार्थनाएँ

एक बार शिष्यों की एक टोली बाल शेम टोव (यहूदी महात्मा और रब्बी जिन्हें हसीदी यहूदी धर्म के संस्थापक माना जाता है) के साथ जा रही थी, उन्होंने एक अनपढ़ ग्रामीण को अकेले में यहूदी प्रार्थना करते हुए सुना। वह प्रार्थना के शब्दों का उच्चारण गलत ढंग से कर रहा था। वह जिस तरह प्रार्थना के शब्दों को बिगाड़ कर बोल रहा था उसे सुनकर सभी हँसने लगे।

बाद में बाल शेम टोव ने उनसे कहा, "प्रार्थना दिल से की जानी चाहिए। इसलिए साधारण लोगों की प्रार्थनाएँ अकसर भक्ति-भाव से परिपूर्ण होती हैं क्योंकि वे उनके दिल से निकलती हैं। परमात्मा के लिए ऐसी प्रार्थनाओं की बहुत अहमियत होती है। अनपढ़ लोग भले ही शब्दों का गलत उच्चारण करते हों, लेकिन परमात्मा उन सभी प्रार्थनाएँ को उसी भाव से स्वीकार करता है, जिस श्रद्धा भावना से वे की जाती हैं।"

एक छोटा-सा बच्चा, जो ठीक से बोल नहीं पाता, जब तोतली आवाज़ में अपने पिता से कुछ कहता है, तब उसकी बातें पिता के हृदय को छू लेती है और बच्चे की नादानी-भरी तोतली आवाज़ से पिता को ख़ुशी मिलती है। बच्चा जो चाहता है, उसे वह देने में पिता को ख़ुशी महसूस होती है। उसी तरह, जब कोई सीधा-सादा व्यक्ति सच्चे दिल से प्रार्थना करता है, भले ही उसने प्रार्थना के शब्दों का उच्चारण ग़लत किया हो, परमपिता परमात्मा को इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। वह केवल उस व्यक्ति के दिल से निकलने वाले प्रेम के भावों को सुनता है।

स्टोरीज़ फ़्रॉम द हार्ट

अपने आपे को आईने में देखना

संत–महात्माओं द्वारा बताए गए दिलचस्प रहस्यों में से एक यह है कि हमारी आत्मा एक आईना है जिसमें परमात्मा का स्वरूप झलकता है। संत–महात्माओं की बानी में हम यह पढ़ते हैं कि जब परमात्मा हमारी आत्मा को देखते हैं, तो उन्हें इसमें अपनी ही छवि दिखाई देती है। संतजन समझाते हैं कि परमात्मा ने हमें अपने स्वरूप में रचा, ताकि हम उसकी सुंदरता को देख सकें।

सूफ़ी संत शेख़ फ़ख़रुद्दीन इराक़ी, अपनी पुस्तक द फेस इन ऐवरी रोज़ में पहले ख़ुद को संबोधन करते हुए कहते हैं:

मेरा हृदय एक आईना है,
इसे अच्छी तरह साफ़ करो और चमकाओ,
ताकि यह दमक उठे।

इसके बाद वे ख़ुदा से मुख़ातिब होते हैं जो अपने शागिर्द की रूह में झाँककर ख़ुद को ही देखता है:

तुम आईने में देखते हो,
ताकि अपनी ख़ूबसूरत छवि को निहार सको।
तुम मुझे अपनी ही हस्ती से सजाते हो,
ताकि मुझे अपनी ही ख़ूबसूरती दिखा सको।

परमात्मा प्रेम है और हमेशा देते जाना ही प्रेम का स्वभाव है। उस परमात्मा ने हमें अपने स्वरूप में इसलिए रचा है ताकि वह अपना प्रेम और अपना सौंदर्य हमारे साथ बाँट सके। शेख़ फख़रुद्दीन इराक़ी अपनी बात को जारी रखते हुए फ़रमाते हैं कि जब हमारी आत्मा अपने अंदर सतगुरु की अद्भुत छवि को देखती है, तो वह उसकी भक्ति करती है और उसके प्रेम को ही वापस प्रतिबिंबित करती है।

जब आशिक़ के दिल का आईना चमकाया जाता है,
तो उसे उसमें अपने महबूब का चेहरा दिखाई देता है।
फिर ये दोनों जगत आशिक़ के लिए
आईना बन जाते हैं
ताकि वह महबूब के नूर को निहार सके और उसकी तारीफ़ कर सके।
जब वह अपने महबूब को याद करता है,
तो आईना दमक उठता है।
और जब वह अपने बारे में सोचता है,
तो आईना धुँधला पड़ जाता है।

अपने दिल के आईने को साफ़ करने के लिए, हमें अपने आप को ख़ुद के ख़यालों से आज़ाद करना पड़ेगा और हमें अपनी आत्मा को अपने ध्यान का ओवरसियर बनाना होगा। हमारी आत्मा, जो इस समय ताक़तवर मन के शिकंजे में है, यह शोर-गुल, सांसारिक तृष्णाओं और मन के छलावे के पीछे चेतन मगर ख़ामोश है; परमात्मा के प्रेम और परमात्मा द्वारा दिए गुणों से सुशोभित आत्मा के अंदर सदा उसकी मौजूदगी का एहसास बना रहता है।

अपनी आत्मा के इस दिव्य स्वरूप का ज़िक्र करके, इराक़ी प्रश्न करते हैं कि तुम अहंकार से भरे अपने सीमित आपे को ही पकड़कर क्यों बैठे हो:

तू ख़ुद को क्यों पकड़े बैठा है?
तू अपने महबूब की आवाज़ तभी सुन पाएगा
जब तू ख़ुद को भूल जाएगा।
तू उस चेहरे का दीदार तभी कर पाएगा
जब ख़ुद से मुँह मोड़ लेगा।

हम ख़ुद को अनोखी और अलग हस्ती होने के भ्रम से कैसे मुक्त करें? हम कैसे उस मन को क़ाबू में करें, जो दृढ़ता से ख़ुद को अनूठा समझने के कारण अपने आप को परमात्मा से तथा दूसरों से अलग समझता है? अपने

विचारों से मुक्त होना हमारे जीवन का सबसे बड़ा और कठिन संघर्ष है। न सिर्फ़ हमारा मन निरंतर कार्यशील रहता है बल्कि हमारे विचार हमारे अहं को निरंतर बढ़ावा देते हैं जो परमात्मा के साथ मिलाप में सबसे बड़ी रुकावट है।

आइए मन की कुछ आदतों पर नज़र डालें जो अहं को बढ़ाती हैं। अपने छोटे से जीवन में, हमने कई छोटी-मोटी और कुछ बहुत बड़ी ग़लतियाँ की होंगी। इन ग़लतियों से हम जीवन के सबक़ सीखते हैं। संतजन समझाते हैं कि हमें अपनी ग़लतियों से सीखकर आगे बढ़ना चाहिए। अगर हम अपनी ग़लतियों से सीखते हैं तो हमें कभी पीछे मुड़कर देखना नहीं पड़ता।

लेकिन मन ऐसा नहीं करता; वह अतीत में ही उलझा रहता है। ग़लती को स्वीकार करके उससे सीखने और उसे भूल जाने के बजाय हम उस याद को पकड़े रखते हैं। ऐसा करने से हमारा ध्यान ख़ुद पर ही केंद्रित रहता है, हम उन यादों को क़ायम रखते हुए अमिट बना लेते हैं। यह न सिर्फ़ हमारे अहं को बनाए रखकर हमारे मन को नकारात्मकता से बोझिल करता है, बल्कि भविष्य में भी समस्याएँ पैदा कर सकता है।

हम अपने कर्मों को ख़त्म करने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन यदि हम यादों, पछतावों आदि को कसकर पकड़े रखते हैं, तो हो सकता है कि हमें उन कर्मों से मुक्त होने के लिए फिर से जन्म लेना पड़े। हमें बताया जा चुका है कि जब भी मन में कोई संस्कार उभरता है, तो हमें 'डिलीट' बटन दबा देना चाहिए, ताकि जीवन के अंत तक हमारा मन स्लेट की तरह साफ़ हो जाए।

इसी तरह, हमें अपने सपनों में अवचेतन प्रभावों को भी मिटाना होगा। सतगुरु समझाते हैं कि सपने की अवस्था में पिछले अनुभवों को दोबारा जीना उन कर्मों से मुक्त होने में मदद कर सकता है। लेकिन जब हम उन घटनाओं को पुन: याद करके उनका विश्लेषण करते हैं, तो हम उन्हें फिर से अपने चेतन मन में डाल देते हैं, जिससे उन्हें फिर से साफ़ करना पड़ सकता है।

अपनी ग़लतियों, पिछले कर्मों और यहाँ तक कि सपनों को सचेत रूप से छोड़ देना, अहं को धीरे-धीरे कम करने का एक ढंग है। आइए, उस धारणा पर ग़ौर करें जिसे हमारा मन दृढ़ता से बनाए रखता है कि हमारी एक अनूठी

और अलग हस्ती है, जो रचयिता से अलग है। यह 'हस्ती' क्या है? हम ख़ुद को अपने शरीर, अपनी भूमिकाओं, अनुभवों, व्यक्तित्व, योग्यताओं, इच्छाओं और उपलब्धियों के आधार पर परिभाषित करते हैं।

हुज़ूर महाराज सावन सिंह जी (बड़े महाराज जी) हमारी इस मानव देह के बारे में फ़रमाते हैं:

> *बाहरी सौंदर्य, रूप की मनोरमता, व्यक्तित्व का आकर्षण–चाहे वह तुम्हारा हो या किसी और का–सदा नहीं रहता। इस झूठे दिखावे से आकर्षित मत हो जाना। इन अस्थायी ख़ूबियों से भ्रमित मत हो जाना। सुंदर या कुरूप, गोरा या साँवला, नाज़ुक या सख़्त, अति सुंदर या साधारण–जो भी आकार तुम देखते हो, वे सभी माटी से पैदा हुए हैं। वे माटी के पुतले हैं। ये सभी आकार क्षणभंगुर हैं, जल्द ही मिट जाएँगे और सदा क़ायम नहीं रहेंगे। ये इस मायामय संसार के बाज़ार से ख़रीदे गए उन वस्त्रों की तरह हैं जिन्हें हमें इस संसार से जाने से पहले त्यागना ही पड़ेगा। तुम्हारे जीवन का उद्देश्य इनसे ऊपर उठना होना चाहिए।*
>
> *डिस्कोर्सेज़ ऑन संत मत, वॉल्यूम I*

हम अपने बारे में क़ायम की गई धारणाओं की तुलना संतों द्वारा बयान किए गए सत्य से कैसे कर सकते हैं? संतजन समझाते हैं कि जब से यह सृष्टि बनी है, तब से हम यहाँ हैं और हम इस नश्वर शरीर को छोड़ने के बाद भी जीवित रहेंगे। उनका कहना है कि युगों-युगों से हमने अनगिनत योनियों में जन्म लिया है। वे बताते हैं कि यदि हम फिर से मनुष्य के रूप में जन्म ले भी लें, तब भी पिछले जीवन में जो पहचान या "व्यक्तित्व" हमने बनाया था, वह उस शरीर की मृत्यु के साथ हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है।

मगर अपने बारे में हमारा ख़याल कि हम कौन हैं, हम सोचते हैं कि हमारी व्यक्तिगत विशेषताएँ और अनुभव जो केवल इसी जन्म तक सीमित हैं, वे ही हमें परिभाषित करते हैं। तो फिर अपने सभी पिछले जन्मों में हम

कौन थे और जब हमारा यह वर्तमान जीवन समाप्त हो जाएगा, तब किसकी हस्ती फिर भी क़ायम रहेगी?

संत–महात्मा समझाते हैं कि हम अमर–अविनाशी जीव हैं; हम अपने वास्तविक स्वरूप में विशुद्ध चेतना हैं। हमारा वास्तविक स्वरूप विचारों के पीछे छिपा रहता है, इसका आधार न तो यह संसार है और न ही वे बदलती भूमिकाएँ जिन्हें हम निभाते हैं। वे समझाते हैं कि हम असल में आत्मा हैं जो निर्मल, अमर, पवित्र, सूक्ष्म और सर्वशक्तिमान शब्द द्वारा क़ायम है। लेकिन इस मायामय संसार में आकर हम अपने असल स्वरूप को भूल गए हैं। माया के खेल में मस्त होकर और इंद्रियों भोगों के प्रलोभन में आकर हमने अपने मन को खुला छोड़ दिया है और आत्मा को बंदी बनाकर रख दिया है। लेकिन शिष्य होने के नाते अब यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने मन को अनुशासित करें और इसे एक बार फिर से आत्मा का वफ़ादार सेवक बना दें। जब मन हमारे वश में आ जाता है तब यह हमें संसार से बाँधकर नहीं रखता। जब मन की निरंतर हो रही हलचल शांत हो जाती है तब यह इस संसार से परे अपने असल सत्य में समा जाता है।

महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार, मन अपनी स्वाभाविक अवस्था में बादलों के पीछे छिपे आकाश की तरह है। अपने विशुद्ध स्वरूप में मन विचारशून्य, निर्मल और ज्ञान रूप है।

हम उस विचारशून्यता और निर्मलता तक कैसे पहुँच सकते हैं? सतगुरु समझाते हैं कि ऐसा केवल 'शब्द' की शक्ति द्वारा ही संभव है। *सार बचन संग्रह* पुस्तक में स्वामी जी महाराज के वचन हैं:

धुन सुन कर मन समझाई॥
कोटि जतन से यह नहिं माने। धुन सुन कर मन समझाई॥

मन और इंद्रियों ने हमारी आत्मा को उसकी असल पहचान भुला दी है। हुज़ूर बड़े महाराज जी पुस्तक *डिस्कोर्सेज़ ऑन संत मत*, वॉल्यूम I में फ़रमाते हैं कि आत्मा पर इनका प्रभाव किसी जादू जैसा है और अपने अंदर गूँजनेवाली दिव्य शब्द–धुन को सुनकर ही आत्मा इस मायामय संसार से मुक्ति प्राप्त कर सकती है:

नाम के बिना, शारीरिक भोगों में लिप्त आत्मा मन के चंगुल से कभी नहीं छूट सकती। मन और इंद्रियों ने इस पर ऐसा जादू कर दिया है कि यह अपने ऊँचे स्रोत और जीवन के असल उद्देश्य को पूरी तरह से भूलकर इस दृश्यमान जगत में बुरी तरह से फँसी हुई है। नाम ही वह मंत्र है जो इस जादू के असर को ख़त्म कर सकता है और इसे फिर से इसकी सर्वोच्च विरासत के बारे में सचेत कर सकता है।

इस मायामय संसार में अनन्त जन्मों से विचरण करते रहने के कारण हमें अपनी सर्वोच्च विरासत की याद नहीं रही। शब्द ही वह मंत्र है जो इस जादू के असर को ख़त्म कर देगा और मन द्वारा सदियों से इकट्ठी की गई मैल को साफ़ कर देगा। भजन–सिमरन द्वारा हमारी आत्मा अपने अंदर की दिव्यता के बारे में जागरूक हो जाती है।

इराक़ी फ़रमाते हैं कि जब हम अपनी ख़ुदी को त्याग देते हैं, ख़ुदा हमें वापस निज–घर ले जाता है।

तू ख़ुद के दम पर वहाँ नहीं पहुँच सकता
क्या छोड़ नहीं देना चाहिए तुझे अपनी ख़ुदी को
तेरे अंदरूनी पंख तुझे वहाँ पहुँचा देंगे
एक बार जब अल–अहद से उठी लहर तुझे बुलंदी पर ले जाती है
फिर न इल्म बाक़ी रहता है, न जहालत
न विसाल होता है, न जुदाई
सिर्फ़ वही रह जाता है
और तुम्हारा कोई नामो–निशाँ नहीं बचता।

द फ़ेस इन ऐवरी रोज़

आख़िरकार जिसे हम अपनी पहचान समझते थे, वह पीछे छूट जाएगी। सिर्फ़ हमारा असल स्वरूप ही क़ायम रहेगा–वह चेतना जिसका संबंध स्वयं परमात्मा से है, जो उसकी ख़ूबसूरती, आनंद और प्रेम को प्रकट करती है।

हमारे जीवन के दिन

कई साल पहले, जब मैं मुश्किल दौर से गुज़र रही थी, मेरे बचपन की एक दोस्त, जिसे नामदान नहीं मिला था, मुझसे बोली: "तुम शाकाहारी हो, तुम शराब नहीं पीती, नशीले पदार्थ नहीं लेती, ध्यान–साधना भी करती हो–और फिर भी तुम्हारे हालात कितने मुश्किल हैं! तुम्हारी समस्या क्या है?" मैं बहुत लज्जित महसूस करती अगर मैं इतनी ज़ोर से हँस नहीं रही होती। मैंने जवाब दिया, "सोचो अगर मैं भजन–सिमरन न करती और मांस, शराब, नशे से दूर न रहती तो मेरे हालात और कितने मुश्किल होते?" इस पर वह आगे से कोई तर्क न दे सकी।

सच कहूँ तो, मैं संतमत की शिक्षाओं का पालन करके एक अच्छी मिसाल क़ायम नहीं कर सकी–हालाँकि मेरी पुरानी दोस्त मानती है कि मैं पचास साल से भी ज़्यादा समय से इस मार्ग पर चल रही हूँ और जैसे–जैसे साल गुज़रते गए, मैं अधिक प्रसन्नचित्त और संतुलित होती गई हूँ।

जब हमें नामदान मिला, तो हममें से कई पुराने लोगों ने यह सोचा था कि हम जल्द ही "अंदर जाएँगे", सतगुरु के नूरी स्वरूप के दर्शन करेंगे और कुछ ही वर्षों में शब्द–धुन को सुनने लग जाएँगे। हम बहुत मेहनत करेंगे, अपनी कमज़ोरियों पर क़ाबू पा लेंगे, जितना संभव हो सका, सतगुरु से व्यक्तिगत तौर पर मिलेंगे और हमें रूहानी आनंद प्राप्त हो जाएगा–साथ ही हमें अपने पेशे में बहुत सफलता मिलेगी और हमें प्यार करनेवाला एक परिवार भी होगा।

लेकिन फिर हमें समझ आया कि जिस तरह कॉलेज के दिनों में हम अपनी गाड़ी में थोड़ी–सी नींद और थोड़ी–सी भौतिक सुख–सुविधाओं के साथ गुज़ारा करते हुए तीन दिन का सफ़र तय करके न्यूयॉर्क से लॉस एंजिल्स (या बेंगलुरु से अमृतसर) पहुँच जाते थे, शायद हमारा रूहानी सफ़र वैसा नहीं था। उम्र के साथ हमने जीवन के उतार–चढ़ाव का सामना

किया, हमें एहसास हुआ कि यह मार्ग लंबा और कठिन है और उस प्रकाशमय रूहानी लोक में झट से छलाँग लगाकर नहीं बल्कि धीरे-धीरे क़दम बढ़ाते हुए पहुँचा जा सकता है।

यह अच्छी बात है। संत-सतगुरु अपने अनुभवों और ग़लतियों से सीखने के महत्त्व पर बार-बार बल देते हैं। हममें से जो लोग कम उम्र में नामदान प्राप्त करके बुढ़ापे तक पहुँच गए हैं, वे अपने जीवन के लंबे सफ़र को देख सकते हैं और जान सकते हैं कि हमारी क़िस्मत में कितने उतार-चढ़ाव थे जिनमें से हमें गुज़रना पड़ा, जिन्हें स्वीकार करना पड़ा व जिनसे हमने बहुत कुछ सीखा। बीमारियाँ, असफलताएँ, नुक़सान, मुश्किल दौर-साथ ही ख़ुशियाँ और सफलताएँ-इन सब के ज़रिए जीवन के रहस्यों को समझने और शब्द-धुन के इस मार्ग की दीक्षा पाने के सौभाग्य के लिए हम तहे-दिल से आभारी हैं। हाँ, हमसे गलतियाँ हुईं हैं, हमने कुछ ग़लत फैसले भी किए हैं... लेकिन हम आज भी यहाँ हैं, संघर्ष करते हुए, कोशिश करते हुए, सीखते और बढ़ते हुए। हम आज भी नामदान मिल जाने, सतगुरु के साथ मिलाप हो जाने, हर दिन अपने सतगुरु के साथ अपने रिश्ते को और ज़्यादा गहरा और बेहतर बनाने का अवसर पाने के लिए शुक्रगुज़ार हैं।

हमने बहुत कुछ सीखा: जिसके बारे में हम सचमुच कुछ भी नहीं जानते थे, ख़ासकर रूहानियत के बारे में; कि हमें अपने कर्मों की ज़िम्मेदारी लेनी पड़ती है; इस दुनिया की कोई भी चीज़ हमें सच्चा सुख नहीं दे सकती; यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है-न ख़ुशी और न ग़म, न सुख और न दुःख; सतगुरु सचमुच हमारा सहारा बनकर हमारे साथ खड़े हैं। तब भी जब हमें उनकी मौजूदगी का एहसास न हो पाए, हमें लगता है कि जो कुछ भी हो रहा है हमारी भलाई के लिए हो रहा है, ख़ासकर जब हमें वह नहीं मिलता जो हम सोचते थे कि हमें मिलना चाहिए था। हमने यह भी सीखा कि यह बिलकुल सच है कि सतगुरु हमारी परख नहीं करते; वह हमसे भी अधिक हमें सफल होते देखना चाहते हैं; अगर हम पीछे देखने के बजाय आगे

देखते हैं, संसार की ओर देखने के बजाय अंतर में देखते हैं, तो वे हमारी रहनुमाई और मदद ज़रूर करेंगे।

सतगुरु अक़सर समझाते हैं कि शब्द और आंतरिक अनुभव वैसे नहीं है, जैसा हम सोचते हैं। असल में, इस मार्ग पर चलना वैसा नहीं है, जैसा हमने सोचा था। हमारे सतगुरु ने जो कुछ हमें दिया है और जो सब हमारे लिए किया है, उसके लिए हमें उनके आभारी होना चाहिए और उस सब की क़द्र करनी चाहिए। लेकिन जैसा कि हमें बताया गया है, हर किसी को आगे बढ़ने के लिए कोई प्रेरणा चाहिए। एक बात हम यक़ीनन मान सकते हैं: सर्वोत्तम अभी आने वाला है।

सर्वोत्तम मुक्ति

हमारा मानव शरीर, हर जीवित वस्तु की तरह, नाशवान है। यह केवल एक चोला है जिसके ज़रिए हम इस दुनिया में कार्यशील हैं और विचरण करते हैं तथा आख़िरकार यह शरीर भी ख़त्म हो जाएगा।

संत नामदेव की कविता, जो *स्वर अनेक, गीत एक* पुस्तक में दर्ज है, जीवन की क्षणभंगुर प्रकृति को व्यक्त करती है:

पानी में जो दिखें बुलबुले, पल भर में ये मिट जाएँ।
दिखता है संसार भी यूँ ही, अंत समय कुछ हाथ न आए।
जैसे खेल सपेरे का कुछ पल का, वैसा ही यह संसार का तमाशा।
जग का सत्य भी पल भर का, कहे नामा यहाँ कुछ नहीं अच्छा।

इस समय हमें जीवन असल लगता है, लेकिन फिर हम नहीं रहेंगे। आज यहाँ हैं, कल नहीं होंगे। हममें से बहुत-से लोगों को मृत्यु बहुत दूर की बात लगती है और हम आमतौर पर जीवन को ऐसे लेते हैं जैसे कि हम हमेशा के लिए यहाँ रहेंगे। लेकिन जीवन जादूगर के हाथ में सिक्के की तरह है, जो ग़ायब होने से पहले केवल एक पल के लिए दिखाई देता है। यह जीवन आरज़ी, मायामय और निराशाजनक है।

परमात्मा द्वारा दिया गया सबसे अमूल्य उपहार जीते-जी मरने का अवसर प्राप्त होना है। इस दौरान हम अपने शरीर के चोले को छोड़कर अपनी आत्मा को मुक्त करने की तैयारी करते हैं। समय के साथ एक जागरूकता हमें बाहरी वास्तविकता से आंतरिक असलियत की ओर ले जाती है, जहाँ हमें किसी आवरण की ज़रूरत नहीं पड़ती। हम बाहर जो कुछ भी देखते हैं, वह आंतरिक सच्चाई की परछाईं मात्र है। न केवल हमारा शरीर बूढ़ा होकर मृत्यु को प्राप्त होता है बल्कि हमारी ज़मीन-जायदाद भी नष्ट हो जाती है और हमारे जीवन में लोग भी केवल सीमित समय के लिए रहते हैं। आख़िरकार हमें यह एहसास होता है कि हम मायामय संसार में रहते हैं।

जैसे–जैसे जीवन बदलता है, हमें अपनी पहचान के खो जाने का डर सताता है। हालाँकि, रूहानियत में हम अपने आप को मिटाकर ही अपना आत्मिक स्वरूप खोज सकते हैं। इस अस्थायी दृश्यमान माया के जाल से मुक्ति हमें उस परम सत्य परमात्मा की ओर ले जाती है जो शाश्वत और अनादि है।

कभी–कभी सबसे बड़ी मुक्ति की शुरुआत अपनी मूर्खता का एहसास होने से होती है ताकि हम अपनी ग़लतियों से सीख सकें और फिर ऐसे निर्णय लें जो हमें मुसीबत में न डालें। संत–महात्मा हमें समझाते हैं कि हम अपने कर्मों से अपने लिए एक कर्मजाल बुन लेते हैं क्योंकि हर कर्म का कोई न कोई परिणाम होता है। जैसा हम बोते हैं, वैसा ही काटना पड़ता है। इसलिए, हमें कर्म करने से पहले सोचना चाहिए, बिना सोचे–समझे कुछ नहीं करना चाहिए, ताकि हम कर्म और फल के इस संसार में ख़ुद को और अधिक मज़बूती से बँधने से बचा लें।

जब तक हम अपने कर्मों का हिसाब चुकता नहीं कर लेते, हम इस दुनिया से मुक्त नहीं हो सकते। समय के साथ हमने बहुत सारे कर्म इकट्ठे कर लिए हैं, अच्छे और बुरे दोनों, जो हमें इस संसार से ही बाँधकर रखते हैं। अपने रूहानी सफ़र के दौरान इस बात की तरफ़ ध्यान देना ज़रूरी है कि क्या हमारे द्वारा लिए गए फ़ैसले हमारे हित में हैं या वे हमें हानि पहुँचा सकते हैं। हम अकसर ऐसे कर्म कर बैठते हैं जो विनाशकारी होते हैं या हमें परमात्मा के नज़दीक ले जाने के बजाय उससे दूर ले जाते हैं।

अपने सच्चे निज–घर परमात्मा के पास वापस लौटकर सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्त करने के लिए, हमें थोड़े समय के लिए मिले इस मनुष्य–शरीर का सदुपयोग करना चाहिए। हमें अपने कर्मों को भोगते हुए, संसार में अपनी ज़िम्मेदारियों को निभाते हुए, एक नेक इनसान बनकर अपने सतगुरु के हुक्म का पालन करते हुए हर रोज़ भजन–सिमरन करना चाहिए। हुज़ूर महाराज चरन सिंह पुस्तक *संत संवाद*, भाग 1 में इस प्रकार समझाते हैं:

> *भजन–सिमरन करते हुए हमें दो बातों को ध्यान में रखना है, पहली यह कि मन के प्रभाव और उसके बहकावे में आकर हम किसी भी ऐसे बुरे कर्म के*

बीज न बोयें, जिनके कारण हमें इस संसार में वापस आना पड़े। दूसरी यह कि पिछले जन्मों में हमने जो भी कर्म इकट्‌ठे किये हैं यानी हमारे संचित कर्म, हमारे कर्मों का भंडार, उसे भी नष्ट करना होगा। क्योंकि जब तक उसे नष्ट नहीं किया जाता, हम परमात्मा के पास कभी वापस नहीं जा सकते और न ही कभी इन कर्मों से छुटकारा पा सकते हैं।...अपने संचित कर्मों को हम केवल भजन-सिमरन से ही नष्ट कर सकते हैं।

केवल तभी आत्मा मृत्यु के समय शरीर और मन के बंधनों से मुक्त हो सकती है और हम आख़िरकार परमात्मा के पास अपने निज-घर वापस लौट सकते हैं। मुक्ति की यह प्रक्रिया अकसर धीमी होती है, क्योंकि हमें अनगिनत जन्मों में जमा किए बेशुमार कर्मों का हिसाब देना होता है।

भजन-सिमरन द्वारा हम हर रोज़ परमात्मा की ओर क़दम आगे बढ़ाते हैं। जब हम यह यात्रा शुरू करते हैं, तब हम स्वयं को कभी संदेह करनेवाले, कभी जिज्ञासु या विश्वास करनेवाले के रूप में पाते हैं। जब हम संदेह करते हैं, तो प्रश्न उठते हैं और फिर हम उत्तरों और सत्य की खोज करते हैं। जब हमारे सभी सवालों के जवाब मिल जाते हैं, तब हमें इस मार्ग पर भरोसा हो जाता है फिर हम निष्ठा से दृढ़तापूर्वक इस मार्ग पर चलते हैं।

संत-महात्मा हमें समझाते हैं कि यह दुनिया हमारा सच्चा घर नहीं है। हम कई जन्मों से यहाँ फँसे हुए हैं। इस मनुष्य-शरीर में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त होने के साथ हमें परमात्मा के पास घर लौटने का अवसर मिला है। यह परमात्मा की मौज पर निर्भर करता है कि वह हमें घर जाने का रास्ता कैसे दिखाता है। इस पूरे सफ़र के दौरान, जब भी हमें ज़रूरत होती है, हमारे सतगुरु सहायता करने के लिए, हमें प्रेरणा देने के लिए, हमारी हौसला-अफ़ज़ाई के लिए हमेशा मौजूद रहते हैं। वह हमारे अंदर तड़प पैदा करते हैं, जो इतनी तीव्र होती है कि हम इसे अनदेखा नहीं कर सकते। नामदान के समय, सतगुरु हमें इस दुनिया से मुक्त करवाकर परमात्मा के पास वापस ले जाने का वायदा करते हैं। नामदान कोई रस्म या रिवाज नहीं है। यह एक प्रतिबद्धता है। पूर्ण देहधारी सतगुरु

हमारे और परमात्मा के बीच बिचौलिया होता है। हम उससे मिल सकते हैं, बात कर सकते हैं और उत्तर जान सकते हैं। रूहानी सफ़र में हमें सही मार्ग पर डालने के लिए सतगुरु का होना बहुत अहम है।

भजन-सिमरन हमें मृत्यु के लिए तैयार करता है क्योंकि भजन-सिमरन द्वारा हम रोज़ाना मरने का अभ्यास करते हैं ताकि जब मृत्यु आए तो हम उसका स्वागत करने के लिए तैयार रहें। मृत्यु को प्राय: मनुष्य शरीर के नाश के रूप में देखा जाता है, लेकिन आध्यात्मिक दृष्टिकोण से मृत्यु इससे कहीं बढ़कर है।

मृत्यु क्या है? जब हमारी इच्छाएँ ख़त्म हो जाती हैं और हमारा मोह धीरे-धीरे कम हो जाता है और हम अपने आप को इस संसार में फँसा हुआ नहीं पाते। भजन-सिमरन द्वारा हमें उस आंतरिक सत्य का अनुभव होता है जो हमें हमारे निज-घर शब्द के प्रकाश और ध्वनि की ओर ले जाता है। यह वह चिंगारी है जो आत्मा को जागृत करती है। संत-महात्मा हमें समझाते हैं कि भजन-सिमरन द्वारा हम ख़ुद को मृत्यु के लिए तैयार करते हैं। यह तैयारी हमारे मन को शांत करती है और हमें उस अद्‌भुत ख़ज़ाने की झलक दिखाती है जो हमारे इंतज़ार में है। हमें मृत्यु से डरने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि मृत्यु इस अधूरे संसार से सदा के लिए मुक्ति, आनंद और सच्चे प्रेम की प्राप्ति का रास्ता है।

इस सर्वोत्तम मुक्ति को पाने और भ्रम तथा सत्य के द्वार से गुज़रने के लिए, हमें अपने दायरों को खोलने और मन को स्थिर करने की ज़रूरत है। जो चीज़ें हर रोज़ हमारे ध्यान को भटकाती हैं, हमें भजन-सिमरन के ज़रिए अपने ध्यान को उनकी तरफ़ से हटाना चाहिए ताकि हमें परमात्मा की मौजूदगी का एहसास हो सके। हर चीज़ की शुरुआत प्रेम से और जो भी वह हमें दे रहा है उसे स्वीकार करने से होती है। सतगुरु मृत्यु के समय हमें निज-घर ले जाने के लिए तैयार खड़े होते हैं और हमें परमात्मा के साम्राज्य की कुंजी सौंप दी जाती है। परमात्मा हमारे इंतज़ार में है।

हमें ख़ुद से पूछना चाहिए कि हम पीछे क्यों हट रहे हैं। क्या हमें डर है कि हम इतने अच्छे नहीं, हमारे क़दम डगमगा सकते हैं व हम असफल हो सकते हैं और वह हमें स्वीकार नहीं करेगा तथा हमसे प्रेम नहीं करेगा? ऐसे डर

निराधार हैं। नामदान के समय सतगुरु हमें हमारी सभी कमियों और कमज़ोरियों के साथ स्वीकार कर लेते हैं। सतगुरु हमारी परख नहीं करते क्योंकि परमात्मा के दरबार में सिर्फ़ दया ही है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात, संत-महात्मा हमें समझाते हैं कि संतमत में असफल होने जैसा कुछ है ही नहीं।

सतगुरु ने हमारे सामने अपना भेद प्रकट कर दिया है। हमारे पास लगन के साथ दृढ़तापूर्वक भजन-सिमरन करने का अवसर है। सतगुरु के प्रति प्रेम और भक्ति-भाव प्रकट करने का सबसे उत्तम ढंग यह है कि हम रोज़ाना सिमरन और भजन करने की पूरी कोशिश करें।

आइए, इस मनुष्य-जन्म के अनमोल उपहार का लाभ उठाएँ और मृत्यु को अंत समझने के बजाए शुरुआत समझते हुए इसकी तैयारी में लगें। जन्म और मृत्यु के चक्र से बचने और अपनी आत्मा को मुक्त करवाने के लिए हमें परमात्मा की तरफ़ से वरदान दिया गया है। हमें परमात्मा के दरबार में जाने का न्योता मिला है। इस सफ़र को तय करने के लिए शारीरिक तौर पर क़दम उठाने की ज़रूरत नहीं है। यह चेतना की वह अवस्था है जो मन के दायरे से परे है। हमें पहले जागरूक होना है और फिर विचारों से मुक्त ताकि हम इस संसार से ही न बँधे रह जाएँ।

सतगुरु ने प्रत्येक शिष्य को निज-घर ले जाने का वायदा किया है। आइए हम इस न्योते को विनम्रता से स्वीकार करें, अपना स्थूल चोला उतार फेंके और अपनी आत्मा को मुक्त कर लें। अपने कर्मों और संसार रूपी इस क़ैदखाने को छोड़कर परमात्मा से सच्चा मिलाप कर लेना सभी मुक्तियों में से उत्तम मुक्ति है।

सूफ़ी रहस्यवादी चिश्ती इस सफ़र का सार इस प्रकार बयान करते हैं:

नहीं परदा कोई अब आशिक़ औ माशूक़ के दरम्याँ,
कि विसाले-यार होकर हर इक दुश्मन से फ़ारिग़ हूँ।

हज़रत ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती

प्रेम को समझना

धर्म-ग्रंथ और संत-महात्मा अकसर समझाते हैं कि प्रेम केवल एक भावनात्मक अनुभव नहीं है, बल्कि यह हमारी हस्ती का सार है और ब्रह्मांड को संचालित करनेवाली सृजनात्मक शक्ति का स्वाभाविक गुण है। मौलाना रूम ने इसे बड़ी ख़ूबसूरती से व्यक्त किया है, वह कहते हैं कि प्रेम की यह धारा परमात्मा में से निकलकर पूरे ब्रह्मांड में बहती है। जब हम किसी व्यक्ति को देखते हैं तब हम केवल एक इंसान को नहीं देखते, बल्कि हम उस दिव्य सत्ता के साकार रूप को देखते हैं:

> *उस परमात्मा में से निकलने वाली प्रेम की धारा पूरे ब्रह्मांड में बह रही है। जब तुम किसी मनुष्य के चेहरे को देखते हो, तो क्या सोचते हो? ध्यान से देखो। वह कोई मनुष्य नहीं, बल्कि परमात्मा के प्रेम की धारा है, जो उसमें व्याप्त है।*
>
> *ए सर्टन काइंड ऑफ़ सेल्फ़िशनेस: रूमीज़ ट्रांसफ़ॉर्मेशन ऑफ़ सूफ़ीज़्म*

हमारा असल स्वरूप प्रेम है और हमें बताया जाता है कि परमात्मा भी प्रेम-रूप है। इस तरह हम दिव्य प्रेम के विशाल महासागर में बूंदों की तरह हैं। लेकिन संत-महात्मा इस बात पर बल देते हैं कि हमारी प्रेम की परिभाषा भौतिक संसार तक ही सीमित है। यह विरोधाभास हमें सच्चे प्रेम को पहचानने और यह सोचने पर मजबूर करता है कि क्या हम सच्चे प्रेमी बनने के लायक़ हैं?

फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ द मास्टर्स, वॉल्यूम II पुस्तक में प्रेम को दो क़िस्मों में बाँटा गया है। पहली क़िस्म का प्रेम किसी वस्तु या व्यक्ति के विशेष गुणों, कार्यों या परिस्थितियों पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए, जब एक सुंदर घोड़ा तेज़ दौड़ता है, तो हम उसकी क़द्र करते हैं। लेकिन जब उसकी टाँग चोटिल हो जाती है, तो हमारा रवैया बदल जाता है। यह प्रेम शर्तों पर आधारित होता है और परिस्थितियाँ बदलते ही समाप्त हो जाता है।

ज़्यादातर सांसारिक प्रेम इसी श्रेणी में आता है, जिसका आधार हमारे अलग-अलग नज़रिए, ज़रूरतें और प्राथमिकताएँ हैं।

संत-महात्मा इस बात पर बल देते हैं कि सांसारिक और शारीरिक प्रेम भी ग़र्ज़ों से उत्पन्न होता है, यहाँ तक कि सबसे नज़दीकी संबंधों में भी। सूफ़ी इसे इश्क़ *मिज़ाज़ी* कहते हैं, जो हमारे वर्तमान स्वभाव द्वारा निर्धारित मिजाज़ (देह) का प्रेम है। दूसरी ओर, इश्क़ *हक़ीकी* अर्थात् सच्चा, दिव्य प्रेम भौतिक परिस्थितियों से परे होता है और आत्मा के अंदर उत्पन्न होता है। यह प्रेम बिना शर्त या स्वार्थ के होता है, यह बाहरी गुणों पर निर्भर न होकर प्रेमी के असल स्वभाव पर निर्भर करता है। इसे अनुभव करने के लिए अहं की भावना को छोड़ना पड़ता है, मोह और अपनी पसंद से ऊपर उठना पड़ता है। हृदय में इस दिव्य प्रेम की जगह बनाने के लिए अन्य इच्छाओं को हृदय में से निकालना पड़ता है।

प्रेम में ख़ुद को खो देने का एक दृष्टांत पुस्तक परमार्थी साखियाँ में दर्ज भगवान कृष्ण और उनकी अनन्य भक्त के बारे में दी गई "प्रेम की मस्ती" नामक साखी में मिलता है:

> *एक बार जब कृष्ण जी विदुर के घर गये, उस समय वह घर पर नहीं थे। उनकी पत्नी नहा रही थी। द्वार पर कृष्ण जी ने आवाज़ दी। आवाज़ सुनते ही वह प्रेम में इतनी मस्त हो गयी कि उसे इतना भी होश न रहा कि कपड़े पहन लूँ। बिना कपड़ों के ही उठ भागी। ऐसी हालत में न पाप है, न पुण्य। कृष्ण जी ने कहा कि कपड़े तो पहन। तब उसने कपड़े पहने।*
>
> *अब घर में खाने-पीने का कोई सामान नहीं था। सिर्फ़ केले रखे थे। वह प्रेम में इतनी मग्न हो गयी कि केले छील-छीलकर छिलका कृष्ण जी को देने लगी और गूदा फेंकने लगी। इतने में विदुर आ गये। जब उन्होंने देखा तो कहा, 'अरी पगली! यह क्या कर रही है?' यह सुनकर वह बोली, 'ओहो! मुझे पता नहीं चला।' फिर उसने कृष्ण जी को केले का फल दिया तो कृष्ण जी ने कहा, 'विदुर! इसमें वह स्वाद नहीं है जो छिलके में था।' यह है प्रेम की अवस्था।*

संत-महात्मा प्रेम को रूहानियत में चलनेवाली मुद्रा मानते हैं, यह भजन-सिमरन द्वारा मिलनेवाला उपहार है। दिव्य प्रेम निष्काम भाव से कर्म करने और सतगुरु के हुक्म का पालन करने से मिलता है। हमें कभी भी अपने बाहरी हालात से निराश नहीं होना चाहिए, क्योंकि सतगुरु हमारे प्रारब्ध के बारे में जानते हैं, यह हमारे ही कर्मों का परिणाम है। हमारी गहरी आंतरिक भावनाएँ सतगुरु से छिपी हुई नहीं हैं। बाबा जैमल सिंह जी *परमार्थी पत्र, भाग 1* में समझाते हैं कि हम इस नज़रिए को कैसे अपना सकते हैं:

> *शब्द धुन की प्रेम-प्रीत में सुरत, निरत व निज मन, तीनों को हाज़िर रखना। जिस जगह रखें राज़ी रहना जी। कारोबार सब उन्हीं का है। जहाँ रखें ख़ुश रहना और जो काम करना, सब सतगुरु का ही जानकर करना। अपना आप (अहं) बीच में न रखना, यह बात मन में हमेशा के लिए जमा देना, मन से कभी न निकले। तन, मन, धन, सुरत, निरत और आँखें, मुँह, नाक, कान, हाथ, पैर और सब सामग्री दुनिया के सामान की जितनी भी है, सब सतगुरु की है। 'मैं' है ही नहीं जी। सतगुरु का जानकर सब काम करना। जो मुनासिब है करना जी।*

संतमत में सिमरन और भजन ही वे साधन हैं जिनके अभ्यास द्वारा ही हम "इश्क़ मिज़ाज़ी" भाव सांसारिक प्रेम व सांसारिक सुखों में मस्त होने से बच जाते हैं। भजन-सिमरन द्वारा हम अपने कर्मों का सामना कर पाते हैं और हर प्रकार की द्वैत से ऊपर उठकर परमात्मा से मिलाप कर लेते हैं। जितना अधिक हम समर्पण करते जाते हैं, हमारी नेकी और बदी उस एक में समा जाती है और हम प्रेम में लीन हो जाते हैं। इससे हमें वह शांति और ख़ुशी प्राप्त होती है जिसे हमारे आस-पास के लोग भी महसूस कर पाते हैं। हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी पुस्तक *जीवत मरिए भवजल तरिए* में समझाते हैं कि प्रेम क्यों करना है और कैसे करना है:

अपने आप को प्रभु के सुपुर्द कर दें। किसी से प्रेम करने का अर्थ है अपने आप को दे देना और बदले में कुछ भी पाने की आशा न रखना। अपने आप को दे देना, पूरी तरह से प्रभु को समर्पण कर देना, अपने आप को उसकी मौज पर छोड़ देना भी भजन ही है। हम अपनी पहचान, अपना व्यक्तित्व खोकर उस परमपिता परमात्मा में लीन होना चाहते हैं। तब हमारे अंदर किसी चीज़ की आशा नहीं रहती। आशा तभी रहती है जब 'मैं' का भाव रहता है कि 'मैं' हूँ और 'मुझे' यह चाहिए। जब 'मैं' नहीं रहता तो हमें क्या चाहिए? प्रेम में हमारी 'मैं' नहीं रहती। हम अपने आप को खो देते हैं, समर्पित हो जाते हैं, परमात्मा की मौज में अपने आप को छोड़ देते हैं। तब किसी चीज़ को पाने या निराश होने का सवाल ही नहीं उठता। जितना ज़्यादा हम देते हैं, उतना ही हमारा प्यार बढ़ता है, उतना ही हम अपने आप को खोते हैं, उतना ही हम परमात्मा का रूप बनते जाते हैं।

इसलिए हमें आरज़ी और झूठे सांसारिक रिश्तों के बजाय कभी न बदलनेवाले अमर-अविनाशी सत्य से प्रेम करना चाहिए। यही सच्चा प्रेम माया या भ्रम से ऊपर उठाकर, दिव्य प्रेम की हमारी खोज को पूर्ण कर हमें निज-घर वापस ले कर जाता है और अमर-अविनाशी परमात्मा से हमारा मिलाप करवाता है।